All Subject to Patiala Jurisdiction.
साप्ताहिक कृषि समाचार-पत्र
मूल्य : 6/- रुपए
खेती संदेश
Postage Registered No. PB/PTA/0339/2025-2027
WEEKLY KHETI SANDESH
E-mail : khetisandesh2025@gmail.com
Chief Editor : Parminder Kaur • RNI - PBBIL/25/A0210 • Issue Dt. 31-08-2026 • Vol.2 No.35 • H.O. : # 9-A, Ajit Nagar, Patiala-147001 (Pb.) • M. 90410-14575 • Page 12

गन्ना किसानों की एक ही किस्म पर निर्भरता पड़ रही भारी, लाल सड़न रोग से घटी पैदावार

गन्ने की एक ही किस्म पर जरूरत से ज्यादा निर्भरता किसानों को भारी पड़ने लगी है और चीनी संकट का कारण भी। कभी किसानों की पसंदीदा रही सीओ-0238 ने पैदावार और चीनी की रिकवरी बढ़ाने में बड़ी भूमिका निभाई, लेकिन बड़े क्षेत्र में लगातार इसकी खेती होने से रेड राट (लाल सड़न) रोग का खतरा बढ़ गया।

अब गन्ना वैज्ञानिक खेतों में किस्मों की विविधता बढ़ाकर विकल्प तैयार करने पर जोर दे रहे हैं। सरकार ने भी इसे गंभीरता से लेते हुए आईसीएआर को सीओ-0238 के विकल्प विकसित करने की जिम्मेदारी दी है।

क्या है किसान की जरूरत?

कृषि विज्ञानियों की जरूरत ऐसी किस्में विकसित करने की है जो अधिक पैदावार और चीनी की अच्छी मात्रा के साथ रेड राट और बदलते मौसम का भी मुकाबला कर सकें। क्योंकि चीनी का संकट मिल के गेट से नहीं, खेत से शुरू होता है। गन्ना कमजोर पड़ा तो मिल की रिकवरी घटेगी और उसका असर अंततः चीनी की कीमत पर भी पड़ेगा।

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय की ओर से जारी नवीनतम प्रगतिशील फसल बुवाई क्षेत्र रिपोर्ट के अनुसार, 21 अगस्त 2026 तक देशभर में गन्ने की बुवाई 58.44 लाख हैक्टेयर में हुई है। पिछले वर्ष इसी अवधि में यह क्षेत्रफल 58.87 लाख हैक्टेयर था। यानी इस साल गन्ने के रकबे में 0.43 लाख हैक्टेयर की कमी दर्ज की गई है।

मंत्रालय के अनुसार, कुल गिरावट का मुख्य कारण बिहार और उत्तराखंड में गन्ने के रकबे में कमी है। बिहार में गन्ने का क्षेत्रफल 0.30 लाख हैक्टेयर और उत्तराखंड में 0.20 लाख हैक्टेयर घटा है। वहीं, महाराष्ट्र में भी 0.14 लाख हैक्टेयर की कमी दर्ज की गई। पंजाब और मध्य प्रदेश में भी गन्ने के रकबे में गिरावट ने कुल कमी में योगदान दिया।

उत्तर प्रदेश और हरियाणा में बढ़ा गन्ने का रकबा

गन्ने के क्षेत्रफल में हुई गिरावट की कुछ भरपाई उत्तर प्रदेश और हरियाणा में बढ़े रकबे से हुई। उत्तर प्रदेश में गन्ने का क्षेत्रफल 0.36 लाख हैक्टेयर बढ़ा, जबकि हरियाणा में 0.21 लाख हैक्टेयर की वृद्धि दर्ज की गई। हालांकि, गन्ना उत्पादक राज्यों में हुई कुल गिरावट बढ़े हुए रकबे से अधिक रही। इसके परिणामस्वरूप खरीफ 2026-27 में गन्ने के कुल क्षेत्रफल में 0.43 लाख हैक्टेयर की शुद्ध कमी दर्ज हुई है।

सामान्य स्तर से अभी भी अधिक है गन्ने का रकबा

हालांकि, पिछले वर्ष की तुलना में गन्ने की बुवाई कम हुई है, लेकिन मौजूदा क्षेत्रफल अभी भी सामान्य मानक से अधिक है। कृषि एवं किसान कल्याण विभाग ने इस अवधि के लिए गन्ने के सामान्य बुवाई क्षेत्र का मानक 54.20 लाख हैक्टेयर निर्धारित किया है। इसकी तुलना में 21 अगस्त तक इस वर्ष गन्ने की बुवाई 58.44 लाख हैक्टेयर में हो चुकी है।

देश में कुल खरीफ बुवाई भी घटी

गन्ने के आंकड़े देश में खरीफ फसलों की व्यापक बुवाई स्थिति का हिस्सा हैं। रिपोर्ट के अनुसार, 21 अगस्त 2026 तक भारत में सभी खरीफ फसलों का कुल बुवाई क्षेत्र 1,056.70 लाख हैक्टेयर रहा, जो पिछले वर्ष की समान अवधि के 1,072.77 लाख हैक्टेयर की तुलना में 16.07 लाख हैक्टेयर कम है। रिपोर्ट में धान, दलहन, मोटे अनाज, तिलहन, कपास तथा जूट एवं मेस्टा जैसी प्रमुख फसलों के आंकड़े भी शामिल हैं।

रेड राट गन्ना का कैंसर

रेड राट को गन्ने का कैंसर कहा जाता है। इससे गन्ने का वजन और रस दोनों घटते हैं और उसमें सुक्रोज की मात्रा कम हो जाती है। आईसीएआर के शोध में भी बीमारी से प्रभावित गन्ने में वजन, रस, ब्रिक्स, सुक्रोज और चीनी रिकवरी में कमी दर्ज की गई है। यानी खेत में कम गन्ना और मिल में कम चीनी।

उत्तर प्रदेश में मौजूदा पेराई सत्र में 6,372 हैक्टेयर गन्ना इस रोग से प्रभावित हुआ, जो 2023-24 में लगभग 61,900 हैक्टेयर से अधिक था। कुछ इलाकों में स्थिति बेहद गंभीर रही। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के निचले क्षेत्रों में सीओ-0238 के खेतों में 60 से 100 प्रतिशत तक पौधों के प्रभावित होने की स्थिति सामने आई।

आईसीएआर ने सीओ-0238 के विकल्प के तौर पर कई नई किस्में विकसित की है, जिन्हें खेतों तक पहुंचना अभी बाकी है। इनमें इक्षु-14 को रेड राट के प्रति प्रतिरोधी बताया गया है। सीओ-16030, इक्षु-10 और इक्षु-15 को भी रेड राट के प्रतिरोधी पाया गया है।

पंजाब खेतीबाड़ी यूनिवर्सिटी ने गन्ने की फसल के लिए जारी की एडवाइजरी

लौह की कमी से पत्तियां सफेद... फेरस सल्फेट छिड़कें

खेत में उचित जल निकासी रखें, ताकि पानी जमा न हो। बारिश के बाद अतिरिक्त पानी खेत से निकाल दें। क्षेत्र में संभावित बारिश के अनुसार रसायनों/उर्वरकों के प्रयोग में आवश्यक समायोजन करें। गन्ने की फसल के सिलसिले में पी.ए.यू. ने अहम एडवाइजरी जारी की।

फसल के गिरने से बचाव के लिए अगस्त के अंत में ट्रैश ट्विस्ट विधि से फसल को सहारा दें। हल्की बनावट वाली और कैल्शियम युक्त मिट्टी में पेड़ी तथा पौधा फसल, दोनों में लौह तत्व की कमी देखी जा रही है। इसके लक्षण सबसे पहले नई पत्तियों पर हरी नसों के बीच पीली धारियों के रूप में दिखाई देते हैं। बाद में नसें भी पीली पड़ जाती है। गंभीर स्थिति में पत्तियां सफेद हो जाती हैं और पौधों की बढ़वार रुक जाती है। इस कमी को दूर करने के लिए लक्षण दिखाई देने के तुरन्त बाद एक प्रतिशत फेरस सल्फेट का घोल (एक एकड़ के लिए 100 लीटर पानी में एक किलो फेरस सल्फेट) का छिड़काव सप्ताह के अंतराल पर दो-तीन बार किया जा सकता है।

गन्ने में तना छेदक कीट के प्रकोप के लिए मौसम अनुकूल रहने की संभावना है। तना छेदक के प्रबंधन के लिए अक्तूबर तक 10 दिन पर ट्राइकोग्रामा चिलोनिस जैव एजेंट की 20,000 प्रति एकड़ की दर से 10-12 बार छोड़ें।

मटर की आधुनिक खेती

जलवायु एवं मिट्टी : मटर कम तापमान के लिए अनुकूलित है। पौधे की वृद्धि के लिए 13 से 18 डिग्री सैल्सियस के बीच का तापमान अच्छा होता है तथा अंकुरण के लिए 15-20 डिग्री सैल्सियस तापमान अच्छा होता है। मटर की फसल के लिए अधिक जीवांश वाली पोटाश से भरपूर दोमट मिट्टी अच्छी रहती है। मटर किसी भी भुरभुरी, अच्छी, जल निकास वाली, पपड़ी मुक्त भूमि पर उगाया जा सकता है। मिट्टी का पी.एच. 6.0-7.5 मान के बीच होना चाहिए। मटर की फसल जल-जमाव बर्दास्त नहीं कर पाता है।

किस्में :

1. अगेती किस्म :

आर्केल : यह झुर्रीदार बीज वाली अगेती किस्म है। पौधे

बौने, हरे रंग के मज़बूत और ऊंचाई में 35-45 सै.मी. ऊंचे होते हैं। फूल सफेद व फलियाँ आकर्षक गहरे हरे रंग की एवं 8 सैंटीमीटर लम्बी होती हैं। इनमें 7-8 मीठे दाने भरे होते हैं। बीज जब पूरी तरह पक जाते हैं, तो हल्के हरे-पीले रंग के हो जाते हैं। बुवाई के 55 से 60 दिन के बाद फलियों की पहली तुड़ाई होती है। हरी फलियों की औसत उपज 100 से 130 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है और बीज की पैदावार 15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

मध्यम किस्म :

बोनविले : मध्यम लंबाई वाली, दोहरी फलियों युक्त, झुर्रीदार बीज वाली किस्म है। 55 से 60 दिनों में फल आते हैं। फलियां हल्के हरे रंग की, सीधी और लगभग 9 सैंटीमीटर लम्बी होती हैं। दाने मीठे और गहरे हरे रंग के होते हैं। बुवाई के 85-90 दिनों के अंदर मटर की फसल तैयार हो जाती है। फलियों की उपज 100 से 120 क्विंटल प्रति हैक्टेयर और बीज 12 से 15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

लिंकन : यह मटर की मध्य मौसमी किस्म है, जिसके पौधे बौने, मजबूत और पत्तियां गहरे हरे रंग की होती हैं। फलियां गहरे हरे रंग की लम्बी और सिरे पर हल्की सी मुड़ी हुई होती हैं, जिनमें 8 से 10 दाने होते हैं और दाने मीठे होते हैं। पहाड़ी इलाकों में बोने के लिए किस्म अधिक उपयुक्त है। पहली तुड़ाई बुवाई के 85-90 दिनों के बाद की जा सकती है।

भारत में उगाई जाने वाली मटर की अन्य किस्में : (1) बी.आर.-12 (2) अपर्णा (3) रचना (4) हरभजन (5) जवाहर मटर (6) जे.सी.-141 (7) बोनविले (8) हरा छोला।

बीज दर : मटर का बीजोपचार एफ.आई.आर. के सिद्धांत पर करें। पहले एफ का मतलब है फफूंदीनाशक बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज अथवा थिरम 2-2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज या ट्राइकोडर्मा विरीडी 5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करने के 24 घंटे के बाद क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 8 मिलीलीटर प्रति किलोग्राम बीज से उपचारित कर लें। फिर दो दिन सुखाने के बाद एक पैकेट (200 ग्राम) राइज़ोबियम कल्चर से 10 किलोग्राम बीज उपचारित कर बीज बोएं।

बुवाई : अगेती किस्में जैसे अर्किल मध्य अक्तूबर से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक बोई जा सकती है। मध्य मौसमी किस्में जैसे बोनविले और लिंकन अक्तूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर के मध्य तक बोई जा सकती है। पछेती किस्म नवम्बर के अंत तक बोई जा सकती है।

लगाने की दूरी : अगेती किस्मों में कतार से कतार की दूरी 30 सैंटीमीटर और मध्य मौसमी और पछेती किस्मों के लिए 45 सैंटीमीटर दूरी रखी जाती है। पौधे से पौधे की दूरी 10-15 सैंटीमीटर उपयुक्त है।

उर्वरकों का प्रयोग : बुवाई से 10-15 दिन पहले खेत की तैयारी करते समय गोबर की खाद 20 टन प्रति हैक्टेयर, यूरिया 12 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर डालें। इसके साथ-साथ 110 किलोग्राम डाई अमोनियम फास्फेट (डी.ए.पी.) व 40 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से दें।

सिंचाई : पहली सिंचाई बुवाई के 15 दिन बाद करनी चाहिए। यदि खेत में नमी कम हो तो 2-3 सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए। फूल आने और फलियों के भरने के समय नमी की कमी नहीं होनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण : फसल की बुवाई से पहले और बाद में पौधे उगने से पहले 900 लीटर पानी में 1.5 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से लिन्यूरान छिड़कने से सभी सदाबहार घासों (दूब) एवं खरपतवारों की रोकथाम हो जाती है। छिड़काव धूप वाले दिन ही जब हवा ना चल रही हो, किया जाना चाहिए। इस उपचार के 10-12 दिनों बाद तक फसल की सिंचाई नहीं करनी चाहिए। ध्यान रहे कि छिड़काव के समय खेत में पर्याप्त नमी हो। छिड़काव लिए कट अथवा फ्लैट फैन नोज़ल का प्रयोग करें। छिड़काव करते समय आगे से पीछे की ओर चलें, जिससे छिड़काव किए गए स्थान पर पैर ना पड़ें।

कीट प्रबंधन :

1. मटर की पत्ती का भेदक :

लक्षण : मटर की पत्तियों पर इसके लार्वा का आक्रमण होने से पत्तियों पर सफेद रंग की टेढ़ी-मेढ़ी नालियां बन जाती हैं और पौधों की बढ़वार रुक जाती है।

प्रबंधन : 0.05 प्रतिशत मिथाइल पाइराथियान का छिड़काव करने से इस कीट की रोकथाम की जा सकती है। यदि इसका प्रकोप दोबारा दिखाई पड़े तो इस उपचार को 15-20 दिन बाद दोहराना चाहिए।

2. माहू :

लक्षण : यह कीट पत्तियों तथा रसदार स्थानों से रस चूसता है। इसके बदले में ये चिपचिपे तरल पदार्थ का भारी मात्रा में स्त्राव करते हैं, जिससे काली फफूंदी आकर्षित होती है। इसके कारण प्रकाश संश्लेषण क्रिया बुरी तरह प्रभावित होती है। माहू का आक्रमण जनवरी के बाद होता है।

प्रबंधन : माहू का प्रकोप होने पर 0.05 प्रतिशत मैटासिस्टॉक्स का घोल छिड़कें। 15-20 दिनों के बाद यदि आवश्यक हो तो दोबारा छिड़काव करें।

3. फली छेदक :

लक्षण : यह कीट फलियों के रास्ते छेद करके फली में प्रवेश करता है और पौधे को हानि पहुंचाता है।

प्रबंधन : फसल पर 0.25 प्रतिशत कार्बोरिल का छिड़काव करके इस बेधक की रोकथाम की जा सकती है। इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि फलियां इस छिड़काव से पहले तोड़ी जाएं अथवा छिड़काव के 10 दिन के बाद ही तोड़ी जाएं।

रोग प्रबंधन :

1. पाऊडरी मिल्ड्यू/चूर्णी रोग :

लक्षण : पत्तियां, तने, शाखाएं तथा फलियां बुकनी जैसे पदार्थ से ढंक जाती हैं। इसका भीषण असर उस मौसम में होता है, जबकि दिन और रात के तापमान में काफी अंतर होता है तथा भारी ओंस गिरती है। यह बीमारी पछेती पकने वाली किस्मों को अधिक प्रभावित करती है। इस रोग में पत्तियों के ऊपर सफेद पाऊडर (चूर्ण) जैसा कवक (फफूंद) दिखाई देता है।

प्रबंधन : जैसे ही यह बीमारी दिखाई पड़े फसल पर प्रति हैक्टेयर 0.3 प्रतिशत वाले 3 ग्राम गंधक के फफूंदीनाशक को एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें और हर सात दिन बाद यह छिड़काव दोहराएं। दूसरे फफूंदीनाशक जैसे कैराथेन, बाविस्टिन का छिड़काव 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से किया जा सकता है।

2. झुलसा रोग :

लक्षण : यह फफूंदजनित रोग है। इस रोग के लक्षण फूल निकलने से पूर्व पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। साथ ही फूल पर भी गहरे भूरे रंग के धब्बे बनकर उसे सुखा देते हैं, जिससे फलियां बनती ही नहीं या सूख जाती हैं।

प्रबंधन : फसल को अक्तूबर के अंतिम सप्ताह में या नवम्बर में बोएं, क्योंकि इस समय बोई गई फसल साधारणतय: झुलसे के आक्रमण से बच जाती है। सितम्बर या अक्तूबर के शुरू में बोई गई फसल को इस बीमारी से सबसे अधिक नुकसान पहुंचता है।

कटाई तथा भण्डारण : सब्ज़ी के उद्देश्य से फलियों के उपयोग के अनुसार ही मटर को तोड़ा जाता है। जब फलियों का रंग गहरे से हल्के रंग में बदल रहा हो तथा वे अच्छी प्रकार भर गई हो तथा सख्त ना हो, तभी उन्हें तोड़ना चाहिए। फलियां तोड़ने के दौरान पौधे को सावधानी से पकड़ना चाहिए ताकि इसमें और फलियां लग सकें। यदि फलियां तोड़ते समय बेलें टूट गई हों तो शेष फलियां समुचित रूप से विकसित नहीं होंगी। बोई गई मटर की फसल की पूर्ण पकने पर कटाई की जाए। साफ-सुथरे खलियान में इसकी मड़ाई करके दाना निकालें।

उपज : मटर की बीज की औसत पैदावार 20-22 क्विंटल और फलियों की 100-130 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

धान के बकाने रोग का एकीकृत प्रबंधन

बकाने रोग एशिया में पाए जाने वाली धान की सबसे पुरानी बीमारी है। यह बीमारी फ्यूजेरियम मोनिलीफामी नामक फफूंद द्वारा फैलती है। इस फफूंद के उपापचय क्रिया द्वारा उत्सर्जित जिबरेलिक नामक अम्ल पौधे के अंदर वृद्धि करने वाले हारमोन का कार्य करता है, जिससे पौधे में अतिवृद्धि हो जाती है। इस रोग से ग्रसित पौधे की लंबाई सामान्य पौधों की अपेक्षा बहुत अधिक हो जाती है। जिसके कारण इन पौधों की दूर से ही पहचान की जा सकती है। इस रोग को उर्वरी भारत में झंडा रोग के नाम से भी जाना जाता है। अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान द्वारा 2003 के आंकलन के आधार पर यह पाया गया कि बकाने रोग ग्रसित पौधों पर कम फुटाव अधिक बढ़वार एवं सूखी पत्तियां बकाने रोग ग्रसित पौधों की निचली नोड से अतिरिक्त जड़ों का निकालना पाया गया है कि इस रोग द्वारा धान की फसल को 20–50 प्रतिशत क्षति होती है। हमारे देश में इस रोग द्वारा उपज में 15 प्रतिशत तक का नुकसान देखा गया है। यह रोग पूसा बासमती 1121 में बहुत ज्यादा पाया जाता है।

यह बीमारी फ्यूजेरियम मोनिलीफामी नामक फफूंद द्वारा फैलती है। इस फफूंद के उपापचय क्रिया द्वारा उत्सर्जित जिबरेलिक नामक अम्ल पौधे के अंदर वृद्धि करने वाले हारमोन का कार्य करता है, जिससे पौधे में अतिवृद्धि हो जाती है। इस रोग से ग्रसित पौधे की लंबाई सामान्य पौधों की अपेक्षा बहुत अधिक हो जाती है। जिसके कारण इन पौधों की दूर से ही पहचान की जा सकती है। इस रोग को उर्वरी भारत में झंडा रोग के नाम से भी जाना जाता है।

रोग के लक्षण :- नर्सरी में बीमारी संक्रमण की तीव्रता पर निर्भर करता है। पौधे की जड़ों पर क्षति के निशान वाले पौधे रोपाई के पहले या बाद में भी मर सकते हैं।

- बीमारी के लक्षण पौध रोपण के एक महीने बाद दिखाई पड़ते हैं।
- सामान्य पौधों की अपेक्षा ग्रसित पौधों की लंबाई बहुत ज्यादा हो जाती है एवं पत्तियां गोलाकार कमजोर दिखाई देती हैं।
- ग्रसित पौधे में अनियमित वृद्धि जड़ों के समीप ऊपरी भाग पर सफेद या गुलाबी रंग की फफूंद की उपस्थिति के कारण होती है।
- पौधे के निचले भाग में पहली या दूसरी पोरी की गांठों के पास से जड़ें निकल आती हैं।
- इससे ग्रसित पौधे का रंग कुछ पीला हरा होता है, जो कि बाद में पीला पड़ जाता है।
- देरी से संक्रमण होने पर अक्सर रोग ग्रसित पौधा सामान्य पौधों की अपेक्षा लंबा व झुका दिखाई पड़ता है, फुटाव भी कम होता है एवं धीरे-धीरे पत्तियां सूखने लगती हैं, इस प्रकार के पौधे अलग ही दिखाई पड़ते हैं।
- संक्रमित पौधे में बालियां जल्दी आती हैं तथा अंत में दाने पकने से पहले ही पौधा सूख जाता है।
- रोग ग्रसित पौधे में अधिकतर कम या बिना दानों वाली अविकसित या खाली बालियां मिलती हैं।

डा. ऋशिपाल, कीट विज्ञान विभाग,
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय–मेरठ उ.प्र. (मो. 94124–21702)

रोग संक्रमण का कारण :- रोगजनक फफूंद के बीजाणु एस्कोस्पोरस व कोनिडिया हवा द्वारा धान की बालियां बनते समय बीज के अंदर प्रवेश कर जाते हैं। अधिक रोगजनक फफूंद से प्रदूषित बीज रंगहीन हो जाते हैं, जिससे अंकुरित पौधे छोटे होते हैं। रोगजनक युक्त बीज प्रायः बकाने बीमारी के लक्षण लाते हैं । बीज को दूषित जल में भिगोने से भी फफूंद के बीजाणु तथा तंतु बीज पर लग जाते हैं। फफूंद का संक्रमण जड़ों से प्रारंभ होकर बाद में पूरे पौधे पर फैल जाता है। रोगजनक फफूंद से सूक्ष्म जीवाणु तथा उसके तंतु संवहनी तंत्र के जाइलम में अधिक पाए जाते हैं।

रोग का जीवन चक्र :- यह रोग धान की कटाई के दौरान हुए संक्रमित बीजों द्वारा मुख्य रूप से फैलता है। इस रोग के जीवाणु शीत ऋतु के दौरान सुशुप्तावस्था में बीज पर लगे रहते हैं, परंतु रोग संक्रमण अंकुरित होने पर ही होता है। संक्रमित बीज को सूक्ष्मदर्शी से देखने पर मध्यम से भारी सफेद रंग की फफूंद बीज को ढके हुए दिखाई पड़ती है। सभी संक्रमित पौधे छोटे अथवा सामान्य दिखाई देते हैं। बाद में फफूंद पाऊडर जैसी पौधों के निचले भाग पर दिखाई पड़ती है। ग्रसित पौधों के सूखने के बाद उसकी गांठों से फफूंद के तंतु पनपते हैं, जिन्हें पानी पर तैरता हुआ देखा जा सकता है। खेत से जल निकासी के बाद संक्रमित पौधे पर प्रचुर मात्रा में रोगजनक फफूंद तनों पर रूई के गुच्छे की तरह लगे रहते हैं, जो फसल कटाई के समय दानों पर लग जाती है। शीत ऋतु में रोग को फैलाने वाले फफूंद के बीजाणु सामान्यतया बीज की पहली सतह पर चिपके रहते हैं तथा कई बार भूमि व डंठलों में भी रह जाते हैं। रोग के फैलने में रोग संक्रमित बीज अधिक महत्वपूर्ण साधन है।

रोग को प्रभावित करने वाले कारक :- मुख्यतया बकाने बीज द्वारा पैदा होने वाला रोग है, परंतु ग्रसित भूमि में बीज की बुवाई करने से भी यह रोग अधिक फैलता है। भूमि में रोगजनक फफूंद 6 से 9 महीने तक रह सकती है।

- भूमि का तापमान 30 सैल्सियस के आस-पास रोग फैलने के लिए अधिक उपयुक्त रहता है।
- अधिक नाइट्रोजन भी इस बीमारी को बढ़ाने में सहायक होती है।
- खेत से जल निकसी करने पर यह बीमारी अधिक तेजी से फैलती है।
- इस रोग का प्रभाव भिन्न-भिन्न बासमती चावल की किस्मों में अलग-अलग होता है। बासमती चावल की किस्म पूसा सुगंध 4 एवं पूसा 1121 में यह अधिक लगता है, क्योंकि यह रोग किस्म रोगजनक के प्रति अधिक सुग्राही पाई गई है।
- हवा या पानी द्वारा रोग के बीजाणु एक पौधे से दूसरे पौधे पर पहुंच जाते हैं।
- 30 से 35 सैल्सियस तापमान बीमारी के विकास में अधिक अनुकूल पाया जाता है।

प्रबंधन :- एरोबिक फफूंद ऑक्सीजन की उपस्थिति में तेजी से पनपती है अतः धान की रोपाई के तुरंत बाद खेतों का पानी न निकालें।

- धान की कटाई के बाद खेत में बचे डंठलों को हटा देना चाहिए, क्योंकि यह फफूंद को सुरक्षित रहने के लिए उपयुक्त माध्यम प्रदान करता है।
- बीज का चुनाव बीमारी रहित खेत से ही करें।
- स्वस्थ व साफ बीज द्वारा बीमारी के प्रकोप को कम किया जा सकता है।
- नमक के पानी का सांद्र घोल बनाकर बीजों को डुबोने से हल्के व रोग ग्रसित बीज ऊपर तैरने लगते हैं, जिन्हें आसानी से अलग किया जा सकता है।
- सोडियम हाइपोक्लोराइट का 5 प्रतिशत घोल बनाकर बीजों को दो घंटे डुबोएं तथा बाद में साफ पानी से धोकर सुखाने से बीमारी पर नियंत्रण किया जा सकता है।
- बीज बोने से पहले फफूंदनाशक रसायन जैसे थाईरम थायोफेनेट मिथाइल, कार्बेन्डाजिम या बिनोमिल से बीज उपचार इस बीमारी को रोकने के लिए प्रभावी पाया गया है।
- बीज उपचार के लिए एक किलो धान के बीज को 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम के घोल में 1 से 2 घंटे के लिए भिगोकर रखें।
- रोपाई से पहले धान की पौध की जड़ों को स्युमोनास बेक्टीरिया के घोल में 10 मि. ली. प्रति किलो पानी में आधा घंटे तक रखें।
- धान के बीजों को 60–62 सैल्सियस पर 15 मिंट तक गर्म पानी में भिगोकर रखने से 95 प्रतिशत बकाने रोग की रोकथाम की जा सकती है।
- बकाने रोग से ग्रसित धान की खड़ी फसल में स्युडोमोनास फलोरेसेन्स जीवाणु के प्रयोग से बीमारी को फैलाने से रोका जा सकता है।

खेती संदेश

KHETI SANDESH

मुख्य कार्यालय :
9–ए, अजीत नगर,
पटियाला–147001
(पंजाब)
मो. 98151–04575

कार्पोरेट कार्यालय :
के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड,
नजदीक शेरे पंजाब मार्केट,
पटियाला–147001
(पंजाब)
मो. 90410–14575

वर्ष : 02 अंक : 35
तिथि : 31-08-2026

सम्पादक
परमिंदर कौर

सम्पादकीय बोर्ड

डॉ. डी.डी. नारंग
डॉ. जे.एस. डाल
डॉ. आर.एम. फुलझेले

Editor : **PARMINDER KAUR**
Printer, Publisher and Owner of Weekly
'KHETI SANDESH' Printed at **Drishti Printers,**
Dasmesh Market, Near Sher-e-Punjab Market,
Gaushala Road, Patiala-147001 (Pb.) and
published from **Kheti Sandesh**, House No. 9-A, Ajit Nagar,
Patiala-147001 (Pb.). E-mail : khetisandesh2025@gmail.com
Mob. 90410-14575, RNI No.**PBBIL/25/A0210**

मित्र कीटों का खेती में योगदान

जब भी कोई जीव एक निश्चित स्तर से ऊपर बढ़ता है तो उसे नियंत्रित करने के लिए अन्य जीव-जन्तु भी बढ़ जाते हैं, जिससे हानिकारक जीवों/कीटों की संख्या आर्थिक हानि पहुंचाने वाले स्तर से नीचे आ जाती है। फसलों को हानि पहुंचाने

वाले नाशक कीटों को प्राकृतिक शत्रु कीट नष्ट करते रहते हैं, जिन्हें किसान के मित्र कीट कहा जाता है। देश की बढ़ती आबादी के भरण पोषण के लिए अधिक से अधिक उपज देने वाली फसलों पर अनुसंधान आज भी जारी है। अधिक से अधिक उपज देने वाली किस्मों में जैव ऊर्जा की कमी नहीं होती, जिसके कारण उन पर पनपने वाले कीटों की संख्या बढ़ती रहती है। जिस कारण इनके नियंत्रण के लिए कृत्रिम तरीकों अपनाना बेहद आवश्यक हो जाता है। कीटनाशकों के अंधाधुंध व निरंतर प्रयोग से अनेक जटिल समस्याएं, जैसे पर्यावरण प्रदूषण, स्वास्थ्य पर बुरे प्रभाव, निम्न श्रेणी के कीटों का हानिकारक स्तर पर उभरकर आना, रस चूसक कीटों की संख्या में बढ़ोत्तरी होना आदि सामने आई हैं। जिससे बचने के लिए कीट नियंत्रण के ऐसे उपायों को विकसित करने के प्रयत्न किये जा रहे है, जहां पर कीटनाशक रसायनों का प्रयोग न के बराबर हो एवं उन पर निर्भरता समाप्त हो जाए। इस प्रकार के प्रयासों को समंवित कीट नियंत्रण का नाम भी दिया जाता है। इसका उद्देश्य कीटनाशकों का उपयोग प्रमुख कीट नियंत्रण के रूप में न करके आखिरी हथियार के रूप में करना है तथा अन्य कीट नियंत्रण विधियों का संरक्षण करना भी है। जैविक नियंत्रण की विधि जिसमें प्राकृतिक शत्रुओं/मित्र कीटों का प्रयोग करके हानिकारक कीटों का नियंत्रण किया जाता है। समंवित कीट नियंत्रण का प्रमुख हिस्सा है। प्रकृति में यह प्रक्रिया स्वत: ही चलती रहती है और सदियों से चली आ रही है।

मित्र कीटों के प्रयोग का इतिहास :- मनुष्य द्वारा एक प्रकार के कीटों से दूसरे प्रकार के हानिकारक कीटों को नियंत्रित करने का प्रयोग बहुत पुराना है। इसकी शुरूआत चीन से मानी जा सकती है, जहां चींटियों को नींबू प्रजाति के फल के हानिकारक कीटों के परभक्षियों के रूप में प्रयोग में लाया गया। अधिक उत्पादन की चाहि ने फसलों की उन्नत हाईब्रिड किस्मों के अनुसंधान व विकास के साथ अनेक प्रकार के हानिकारक कीटों को न्यौता दिया है। फिर उन पर काबू पाने के लिए जहरीली दवाओं के अंधाधुंध व देखा देखी प्रयोग ने कीटों में प्रतिरोधक क्षमता एवं पर्यावरण पर बुरे असर आदि अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। कीटनाशकों के प्रयोग से वांछित परिणाम न मिलने पर एवं आनुवांशिक तकनीक द्वारा तैयार बी.टी. कपास आदि फसलों पर रस चूसक कीटों का कहर बढ़ने से, कृषि वैज्ञानिकों की चिंता को और बढ़ा दिया है। इस सब समस्याओं से बचने के लिए कीट नियंत्रण के ऐसे उपायों को विकसित करने व बढ़ावा देने की जरूरत है, जहां पर कीटनाशकों का प्रयोग न के बराबर हो एवं उन पर आत्मनिर्भरता समाप्त हो सके। इस प्रकार के प्रयासों को समंवित का उपयोग प्रमुख कीट नियंत्रण विधि के रूप में न करके आखिरी हथियार के रूप में करना है तथा अन्य कीट नियंत्रण की विधियों जैसे भौतिक, यांत्रिक, सस्य व जैविक आदि का संरक्षण करना भी है। जैविक नियंत्रण की विधि जिसमें प्राकृतिक शत्रुओं/मित्र कीटों का प्रयोग करके हानिकारक कीटों का नियंत्रण किया जाता है। समंवित कीट नियंत्रण का प्रमुख हिस्सा है। प्रकृति में यह प्रक्रिया स्वत: ही चलती रहती है और सदियों से चली आ रही है।

मित्र कीट कैसा है :- अगर प्रकृति में कोई जीव अपनी संख्या में जरूरत से ज्यादा वृद्धि कर लेता है तो उसे काबू में करने के लिए अन्य जीव जन्तु भी बढ़ जाते हैं, जिससे उस जीव/कीट की संख्या हानि पहुंचाने वाले स्तर से नीचे आ जाती है। फसलों या वनस्पति को हानि पहुंचाने वाले नाशक कीटों को प्राकृतिक शत्रु कीट नष्ट करते रहते हैं, जिन्हें किसान के मित्र कीट कहा जाता है।

मित्र कीटों का वर्गीकरण :- मित्र कीट मुख्यत: अपने आकार, गुण व परपोषी के आधार पर परजीवी, पैरासिटाईड व परभक्षी के रूप में जाने जाते हैं। परभक्षी प्राय: शिकार से बड़े आकार के होते हैं एवं शिकार को पैरों या मुंह में पकड़कर खा जाते हैं। पैरासिटाईड आकार में लगभग अपने शिकार कीट के बराबर होते हैं, इनके अंडे व बच्चे शिकार के शरीर में विकास करते हैं, जिससे शिकार की मौत हो जाती हैं। परजीवी मिलकर अपने शिकार के शरीर में जीवन बिताते हैं, जिससे शिकार कीट दुर्बल, कमजोर होकर प्राय: मृत्यु को प्राप्त होता है।

परजीवी, पैरासिटाईड तथा परभक्षी कीटों का उपयोग करके हानिकारक कीटों की संख्या को नुक्सान पहुंचाने वाले स्तर से नीचा रखते

हैं।

अभी तक ज्ञात कीटों की विभिन्न जातियों में से लगभग 15 प्रतिशत जातियां परजीवी हैं। खेती में सहायक प्रमुख प्राकृतिक कीटों का विवरण इस प्रकार है :

प्रमुख मित्र कीट व उनके द्वारा फसलों के हानिकारक कीटों का नियंत्रण :-

1. भिरड़/ततैया :- पीली व लाल रंग की भिरड़ें एक दिन में 10-25 कीटों को अपनी टांगों में पकड़कर दांतों से खा जाती हैं।

2. ट्राईकोग्रामा :- छोटे आकार की एक मादा पैरासिटाईड सुंडी के अंडों में अंडे देकर 500-700 सुंडी के अंडों को नष्ट कर देती हैं। इसे प्रयोगशाला में तकनीकी ढंग से पालकर खेत में छोड़ा जा सकता है।

3. चित्तीदार लेडी बर्ड-बीटल/सोनपंखी :- इनके गोल शरीर पर सख्त लाल पंखों पर सात काले धब्बे होते हैं, पेट के नीचे का हिस्सा काले रंग का होता है। इनकी 4-5 प्रजातियां पंखों पर अलग-अलग निशानियां लिये पाई जाती हैं। इसके बच्चे व प्रौढ़ दोनों अपने जीवनकाल में 200-800 नरम शरीर वाले कीटों, चेपा, सफेद मक्खी, तेला आदि को खा जाते हैं।

4. क्रोईसोपरला :- इसका रंग हरा, पंख पारदर्शी व बड़े होते हैं। बच्चे मगरमच्छ के आकार जैसे छोटे-छोटे होते हैं। एक बच्चा प्राय: अपने जीवनकाल में 100-600 कीटों को मार कर खा जाता है।

5. सिरफीट मक्खी :- यह मक्खी चेपों के समूह में अंडे देती है। एक जीव 500-800 चेपे/कीट की नाजुक अवस्थाओं को खा कर नष्ट कन देता है।

6. कम्पोलिट्म :- प्रौढ़ सुंडियों के अन्दर अंडे देते हैं, जिससे 10-20 प्रतिशत सुंडियों इसका ग्रास बन जाती हैं।

7. एपीरिकेनिया :- यह परजीवी कीट पायरिल्ला के अंडों, बच्चों व प्रौढ़ तीनों का शिकार करते हैं। अंडे के परजीवी पायरिल्ला के अंडों के अंदर ही पलते हैं व उन्हें नष्ट कर देते हैं। बच्चों व प्रौढ़ों के परजीवी पायरिल्ला के शरीर पर चिपक कर उनका रस चूसते रहते हैं। जिससे उनकी मृत्यु हो जाती हैं और कुदरती तौर पर पायरिल्ला की रोकथाम कर लेते हैं।

8. एनासियस :- कपास के मिलीबग कीट का परजीवी है। इसके आक्रमण से मिलीबग मृत होकर गहरे लाल भूरे पिंडों में बदल जाता है। यह ज्यादातर कंघी बूटी, जंगली सूरजमुखी, कांग्रेस घास धतूरा, चाईना रोज पर मिलता है। ऐसे ममी युक्त (पिंड) पौधों से ममी तोड़कर ग्रसित कपास के खेत में छोड़ देने से मिलीबग का नियंत्रण हो जाता है।

इसके अलावा अन्य मित्र कीट ड्रेगन फ्लाई, डेयसल फ्लाई, प्रैईंग मैन्टिस, ग्राउन्ड बीटल, असैनिक बग, चीलोनस, ब्रेक व टीलोनोमस भी कीट नियंत्रण में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

बैंगन की भरपूर पैदावार

कीटों व बीमारियों के नियंत्रण से

हरियाणा प्रदेश में उगाई जाने वाली सब्ज़ी फसलों में बैंगन का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी साल भर में तीन फसलें ली जा सकती हैं, अर्थात् ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद् ऋतु में इसकी फसल ली जा सकती है। तीनों मौसम में इस फसल में लगने वाले विभिन्न

प्रकार के कीट व बीमारियों द्वारा फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, जिससे किसान को आर्थिक नुकसान होता है। बैंगन में लगने वाले कीट व बीमारियों का नियंत्रण निम्न प्रकार से है :

कीट व उनका नियंत्रण :

तना एवं फल छेदक : इस कीट की सुंडियां गुलाबी रंग की होती हैं, जो लगभग बाल रहित होती है। नवजात सुंडियां नई शाखाओं में छिद्र करके प्रवेश कर जाती है, जिसके कारण शाखाएं मुरझा जाती हैं और पौधों की बढ़वार रुक जाती है। जब फल लगते हैं, तो सुंडियां फलों में घुस कर उन्हें हानि पहुंचाती है। फलों में छेद सुंडियों के बाहर आने के बाद ही दिखाई पड़ते हैं। इस कीट द्वारा 20-25 प्रतिशत तक नुकसान होता है।

नियंत्रण : फूल आने से पहले जैसे ही इस कीट का प्रकोप शाखाओं पर दिखाई पड़े, 75 ग्राम स्पाईनोसैड 45 एस.सी. को 80 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर तीन छिड़काव करें। बीच में फसल के लिए प्रोक्लेम 5 एस.जी. 56 ग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से तीन छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त कीट ग्रसित शाखाओं व फलों को तोड़ कर मिट्टी में गहरा दबा दें या जला दें। छिड़काव करने से पहले तैयार फलों को तोड़ लें।

हरा तेला : इस कीट के हरे रंग के शिशु व प्रौढ़ पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं, जिससे पत्तियां मुड़ जाती हैं तथा बाद में पीली होकर किनारों से सूख जाती हैं।

नियंत्रण : जैसे ही रस चूसने वाले कीट फसल पर दिखाई दें, 300-400 मिलीलीटर मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर छिड़कें। फल शुरू होने पर बारी-बारी से सिन्थेटिक-पाइरेथ्राइड (80 मिलीलीटर फैनवेलरेट 20 ई.सी. या 70 मिलीलीटर साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 200 मिलीलीटर डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी.) और दूसरे कीटनाशक (500 ग्राम कार्बोरिल 50 डब्ल्यू.पी. रोपाई के 35-40 दिन बाद 200 लीटर पानी में घोल कर प्रति एकड़ छिड़काव करें। सिन्थेटिक पाइरेथ्राइड का छिड़काव 15 दिन के अंतर पर दोहराएं।

सफेद मक्खी : यह सफेद पंखों वाला छोटा-सा कीट है। इसके शिशु व प्रौढ़ पत्तों की निचली सतह से रस चूसते हैं, जिससे पत्ते पीले पड़ जाते हैं। यह विषाणु रोग भी फैलाता है।

नियंत्रण : इस कीट के नियंत्रण के लिए 400 मिलीलीटर मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर छिड़काव करें।

हड्डा भूंडी : यह भूंडी अधीवृत्त आकार में तों जैसे रंग की होती है। इसकी सुंडियां (लटें) पीले रंग की, मज़बूत और कांटेदार होती हैं। सुंडी व प्रौढ़ पत्तियों से हरे पदार्थ को खाते हैं।

नियंत्रण : जैसा सफेद मक्खी के लिए बताया गया है।

लाल अष्टपदी (माईट) : पत्तों की निचली सतह पर पीले व लाल रंग के शिशु व प्रौढ़ जाला बना कर रहते हैं। इनके द्वारा रस चूसने से पत्तों पर छोटे-छोटे सफेद धब्बे बन जाते हैं।

नियंत्रण : 300 मिलीलीटर प्रैम्पर 20 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ छिड़काव करें तथा 10-12 दिन के अंतर पर 2-3 बार फिर से छिड़काव करें।

जड़ सूत्रकृमि : इनका जड़ों में आक्रमण होने से पौधों की वृद्धि एवं विकास रुक जाता है। पत्ते पीले रंग के हो जाते हैं। जड़ों में गांठें बन जाती हैं।

नियंत्रण : एक ही खेत में टमाटर, बैंगन, शिमला मिर्च व आलू की एक फसल लेने के बाद दूसरी फसल ना लें। हमेशा सूत्रकृमि रहित पौध ही लगाएं। प्रभावित पौधों को उखाड़ कर जला देना चाहिए।

बीमारियां व उनका नियंत्रण :

फल गलन : यह रोग पत्तों से आरम्भ होकर फलों पर पहुंचता है। फलों का रंग भूरा होना शुरू हो जाता है तथा उस स्थान पर फल गलने लगते हैं।

नियंत्रण : स्वस्थ बीज इस्तेमाल करें तथा बुवाई से पहले बीज का उपचार 2.5 ग्राम थाइरम या कैप्टान प्रति किलोग्राम बीज की दर से करें। फल लगने के बाद जिनेब अथवा इंडोफिल एम-45, 400 ग्राम दवा का 200 लीटर पानी में प्रति एकड़ की दर से 10-12 दिन के अंतर पर 2-3 बार छिड़काव करें।

छोटी पत्ती व मौज़ेक रोग : इस रोग से पत्ते छोटे और पीले हो जाते हैं और पौधे बौने रह जाते हैं। फल बहुत कम लगता है।

नियंत्रण : रोग को फैलने से रोकने के लिए प्रारम्भिक अवस्था में रोगी पौधे निकाल कर नष्ट कर दें। पौध रोपण से पहले पौधे की जड़ों को आधे घंटे तक टेट्रासाइक्लिन के घोल में (0.5 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में) डुबोएं। नर्सरी तथा खेत में तेला तथा सफेद मक्खी से बचाव के लिए बताई गई कीटनाशक दवाईयों का समय-समय पर इस्तेमाल करें।

एलोवेरा पौधे के औषधीय उपयोग एवं लाभ

एलोवेरा एक चमत्कारी संजीवनी औषधीय पौधा है, जिसका उपयोग सदियों से किया जा रहा है। यह गर्म आर्द्र और अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में उगने वाला पौधा है। विश्व में इसकी 200 प्रजातियां पाई जाती हैं, जिनमें से मात्र 5 प्रजातियों को उपयोग उपचार हेतु किया जाता है। चीन, जापान और भारत इसके प्रमुख उत्पादक देश हैं। वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में इसकी मांग में निरंतर वृद्धि हो रही है, कहने का अभिप्राय है कि यह एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा बन गया है। यह कम उर्वरा मृदा में सुगमता से उगने वाला पौधा है। इसे कम पानी व कम देखभाल की आवश्यता होती है। इसका उपयोग सौन्दर्य प्रसाधन उद्योग एवं औषधियों में उपयोग किया जाता है। इसके औषधीय गुणों का उल्लेख नीचे किया गया है :-

* जोड़ों की सूजन, गठिया में एलोवेरा का जूस लाभदायक होता है, क्योंकि यह सूजन को कम करता है, जिससे रोगी को राहत मिलती है।

* एलोवेरा का जूस 'रक्त रोधक' होता है, जिसके उपयोग से एलर्जी, संक्रमण, अल्सर, त्वचा रोगों छुटकारा मिलता है।
* एलोवेरा का जूस पाचन क्रिया हेतु अत्यंत गुणकारी होता है, जिसके कारण पेट के रोगों, जैसे गैस, पेट में जलन, अम्लता, कब्ज आदि में अत्यंत लाभकारी पाया गया है। भोजन के 20 मिनट पूर्व 25-50 मिलीलीटर जूस लेना चाहिए।
* स्वस्थ त्वचा के लिए एलोवेरा जूस का उपयोग अत्यंत लाभकारी होता है, क्योंकि इसमें त्वचा के लिए आवश्यक पोषक तत्व एवं खनिज लवण पाए जाते हैं।
* दांतों, मसूड़ों एवं मुंह के छालों के लिए एलोवेरा जूस अत्यंत लाभदायक होता है।
* एलोवेरा का जूस, बहुत कम कैलोरी वाला होता है, परन्तु अत्यंत पौष्टिक होता है, क्योंकि इसमें 18 अमीनो एसिडस, विटामिन बी (1, 2, 3, 6), सी, ई, फोलिक एसिड, लोहा, कैल्शियम, मैग्नीशियम, ज़िंक, मैगनीज़, तांबा, बोरियम, सल्फेट एवं महत्वपूर्ण एन्जाइम, ग्लाईकोसाइड सहित 200 पोषक तत्व पाए जाते हैं, जो शरीर को पौष्टिकता प्रदान करते हैं, जिसके कारण शरीर स्वस्थ रहता है।
* एलोवेरा का जूस, उच्च रक्तचाप और कोलेस्ट्रोल को प्राकृतिक रूप से कम करता है।
* एलोवेरा का जूस, शरीर से विषाक्त पदार्थों को शरीर से बाहर निकालता है।
* एलोवेरा का जूस आंतों के लिए अत्यंत लाभकारी होता है।
* एलोवेरा का जूस एक उच्च कोटि का 'हैल्थ टॉनिक' होता है, क्योंकि इसमें विटामिन्स, नियासिन, फोलिक एसिड, सोडियम, पोटाशियम, लोहा, तांबा, ज़िंक, कैल्शियम, मैग्नीशियम, क्रोमियम आदि तत्व पाए जाते हैं। प्रोटीन का निर्माण करने हेतु 20 अमीनो एसिड की आवश्यकता होती है और एलोवेरा में 19 अमीनो एसिड्स पाए जाते हैं।
* एलोवेरा का जूस मधुमेह (डायबिटीज़) के उपचार के लिए अत्यंत उपयोगी पाया गया है।
* गुर्दे की पत्थरी के उपचार में एलोवेरा अत्यंत उपयोगी पाया गया है।
* आँखों के विभिन्न विकारों के उपचार हेतु एलोवेरा का जूस उत्तम पाया गया है।
* एलोवेरा के जूस का त्वचा, रेशम, सनबर्न जलने, कटने, घाव ठीक करने हेतु बाह्य उपयोग किया जाता है।
* एलोवेरा जूस का उपयोग सौन्दर्य प्रसाधनों उद्योग में बड़े पैमाने पर किया जाता है। जैसे साबुन, शैम्पो, क्रीमों आदि में प्रचुर मात्रा में उपयोग किया जाता है।
* विदेशों में इसके जूस से 'कोल्ड ड्रिंक्स' बनाए जाते हैं, जो दिनों-दिन अत्यंत लोकप्रिय होते जा रहे हैं।

नोट : आजकल बाज़ार में एलोवेरा के अनेक ब्रांड उपलब्ध हैं। इनमें मिलावट हो सकती है। इसलिए किसी भी ब्रांड का उपयोग करते समय कृप्या उस पर लिखे विवरण को पढ़ कर ही उपयोग करें। साथ ही विश्वसनीय कम्पनी का उत्पाद ही खरीदें।

आप सही उत्पाद को देख कर खरीदें। यदि किसी एलोवेरा जूस के सेवन से आपको अतिसार, उदर शूल आदि 2-3 दिन तक हो, तो इसका सेवन तुरंत बंद कर दें।

आलू खायें कुपोषण भगायें

आलू को पूर्ण आहार माना गया है। यह पोषक तत्वों के गुणों से भरपूर होता है, तभी आज आलू को सभी ने अपने रोजाना भोजन में बिना रोक-टोक के अपना लिया है। आलू की पौष्टिकता, दिनों-दिन आलू की बढ़ती मांग व आलू से तैयार विभिन्न प्रसंस्करित उत्पादों के व्यावसायिक महत्व के कारण आलू की ख्याति देश ही नहीं अपितु विदेशों में भी प्रति दिन बढ़ती जा रही है।

पौष्टिकता के आधार पर आलू के पोषण मूल्य :- सामान्य रूप से ताजा आलू में 80 प्रतिशत पानी तथा 20 प्रतिशत तक शुष्क पदार्थ होते हैं। आलू मे शुष्क पदार्थों में कार्बोहाईड्रेट (स्टार्च), प्रोटीन, खनिज लवण, विटामिन तथा फाईबर मुख्य रूप से पाये जाते हैं। आलू में विटामिन-सी तथा विटामिन-बी भी पर्याप्त मात्रा में मौजूद होता है। इसके अलावा यह पोटेशियम, फॉस्फोरस एवं मैग्नेशियम का भी अच्छा स्त्रोत है। आलू में पाये जाने वाले प्रमुख पोषक तत्वों को निम्नलिखित तरीके से वर्गीकृत किया जा सकता है:

कार्बोहाईड्रेट :- भोजन में कार्बोहाईड्रेट का मुख्य कार्य ऊर्जा प्रदान करना है। 100 ग्राम आलू से लगभ 90-100 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। आलू में लगभग 16-18 प्रतिशत तक कार्बोहाईड्रेट पाया जाता है, जो अच्छे भोजन के लिए महत्वपूर्ण है। कार्बोहाईड्रेट मुख्य रूप से स्टार्च (14 प्रतिशत) तथा शुगर (2 प्रतिशत) द्वारा बने होते हैं। सुक्रोज, फ्रक्टोज एवं ग्लूकोज आलू के प्रमुख शुगर हैं। आलू स्टार्च की पाचन शक्ति, पकाने अथवा प्रसंस्करण करने के बाद कच्चे आलू की अपेक्षा काफी बढ़ जाती है।

प्रोटीन :- आलू प्रोटीन की सुपाच्य शक्ति अधिक है और ये आसानी से मानव शरीर द्वारा अवशोषित किए जा सकते हैं। प्रोटीन अमीनो अम्ल से बनते हैं एवं मानव शरीर के लिए कुल 21 अमीनो अम्ल की जरूरत होती है। आलू का प्रोटीन कई मायनों में आनाज के प्रोटीन से बेहतर होता है। आलू में पाचन योग्य प्रोटीन की मात्रा आनाजों की तुलना में अधिक होती हैं। आनाज में लाईसिन और मिथियोनिन जैसे आवश्यक अमीनो अम्ल कम मात्रा में पाये जाते हैं, जबकि आलू में ये भरपूर मात्रा में उपलब्ध हैं। इसलिए आलू को प्रतिदिन भोजन में शामिल करने से आवश्यक अमीनो करने से आवश्यक अमीनो अम्ल की आपूर्ति हो जाती हैं। वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार आलू प्रोटीन में समस्त आवश्यक अमीनो अम्ल वर्याप्त तथा आनुपातिक मात्रा में होने के कारण इसका जैविक मूल्य अधिक होता है। पाचन की दृष्टि से आलू का प्रोटीन अनाजीय फसलों के प्रोटीन से बेहतर होता है।

वसा :- ज्यादातार लोगों का यह मानना है कि आलू खाने से मोटापा आता है, जबकि यह एक वहम मात्र है। आलू में वसा की मात्रा बहुत कम यानी सिर्फ 0.1 प्रतिशत होती है। दरअसल लोग आलू को तेल में तलकर खाते हैं, जिससे उसमें वसा की मात्रा बढ़ जाती है और मोटापा होता है। आलू को यदि उबालकर अथवा भूनकर खाया जाए तो यह स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध होगा। आलू में वसा का एक बड़ा भाग असंतृप्त वसा अम्ल होता है, जो पोषण की दृष्टि से उत्तम है। असंतृप्त वसीय अम्लों की उच्च मात्रा आलू में मौजूद वसा को पोषक मूल्य को बढ़ाती हैं।

विटामिन :- विटामिन शरीर को स्वस्थ रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आलू में विटामिन-सी तथा बी-समूह में विटामिन भरपूर मात्रा में उपलब्ध होते है। भंडारित आलू के मुकाबले

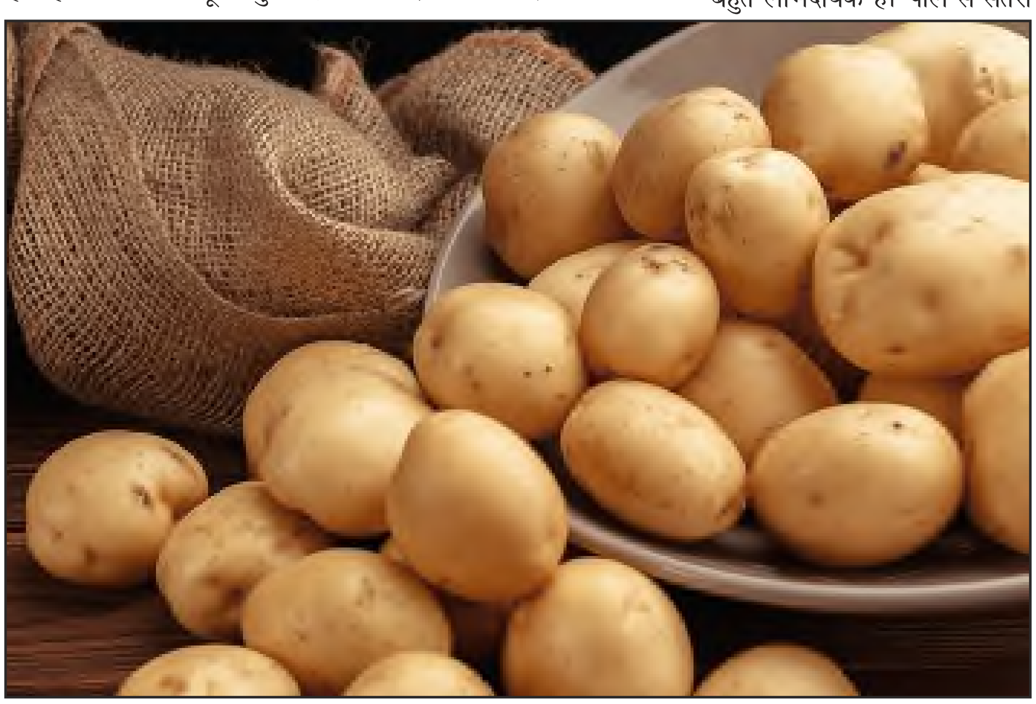

ताजे खुदे हुए आलू में ज्यादा विटामिन-सी होता है। आलू में लगभग 20 मि.ग्रा./100 ग्राम विटामिन सी पाया जाता है, जो कि मक्का, गेहूं, चावल, ज्वार व फली से कहीं ज्यादा है। बी समूह के विटामिन जैसे थियामीन (B-1), राईबोफ्लेविन (B-2), नियासिन (B-3) तथा पेंटोथेनिक अम्ल (B-5) भी आलू में पाये जाते हैं। छिलके सहित उबला हुआ 100 ग्राम आलू विटामिन बी-कॉम्प्लेक्स की दैनिक आवश्यकता पूर्ति में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। सभी बी समूह के विटामिन कार्बोहाईड्रेट को ऊर्जा में परिवर्तित करने में मदद करते हैं।

खनिज लवण :- 100 ग्राम ताजा आलू में मुख्य रूप से पोटेशियम-245 मि.ग्रा., फॉस्फोरस-40 मि.ग्रा. तथा मैग्नेशियम-21 मि.ग्रा. जैसे तत्व पाये जाते हैं। आलू में फाईटिक अम्ल की मात्रा कम होती है, जिससे फॉस्फोरस शरीर को आसानी से उपलब्ध हो जाता है। साथ ही यह कैल्शियम, आयर्न और जिंक को शरीर में ज्यादा आसानी से उपलब्ध करवाने में भी मदद करता है। आलू में उपस्थित फॉस्फोरस की 80 प्रतिशत मात्रा शरीर द्वारा ग्रहण की जा सकती है। दूध में आलू के मुकाबले पांच से दस गुना कम मैग्नेशियम पाया जाता है, जबकि यह कैल्शियम का अच्छा स्त्रोत है। इसलिए आलू को दूध के साथ अनुपूरक भोजन के रूप में उपयोग किया जाना चाहिए। आलू आयर्न का भी अच्छा स्त्रोत है। यह तांबा, मैंगीज, मॉलिब्डेनम और क्रोमियम जैसे आवश्यक तत्वों की दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम है। आलू एक क्षारीय भोजन है और यह शरीर में अम्लता को नियंत्रित करता है। इसमें लगभग एक प्रतिशत खनिज लवण होता है।

रेशा (फाईबर) :- 100 ग्राम आलू में लगभग 0.6 प्रतिशत रेशा मुख्यत: इसके छिलके तथा अंत: कोशिकाओं में पाया जाता है। आलू के छिलके का रेशा गेहूं के छिलके के रेशे से बेहतर होता है, जो शरीर में कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में मदद करता है तथा पाचन में भी सहायक होता है। घुलनशील तथा अघुलनशील फाईबर के साथ-साथ आलू में एक तीसरे प्रकार का रेशा अथवा फाईबर भी पाया जाता है, जो कि प्रतिरोधी स्टार्च के रूप में जाना जाता है। आलू का स्टार्च रक्त में ग्लूकोज की मात्रा को संतुलित रखने में सहायता प्रदान करता है। यह कोलोन कैंसर को रोकने में भी मदद करता है।

एंटीऑक्सीडेंट्स :- आलू में विटामिन व खनिज लवण के अलावा कई एंटीऑक्सीडेंट्स भी होते हैं। आलू में फिनोल्स, फ्लेवोनोइड्स, कूकोयमिनेस, एंथोसायनिन व केरोटेनोइड्स नामक एंटीऑक्सीडेंट्स पाये जाते हैं। लाल से बैंगनी रंग के आलू में भरपूर मात्रा में एंथोसायनिन पाये जाते हैं, जो कि सेहत के लिये बहुत लाभदायक है। पीले से संतरी रंग के गूदे वाले आलू में केरोटेनोइड्स काफी मात्रा में पाये जाते हैं। ये हमारे शरीर को कई रोगों से लड़ने की ताकत देते हैं।

आलू के संदर्भ में फैली गलत भ्रांतियां :- सामान्यत: लोगों में यह गलतफहमी बड़ी आम है कि आलू खाने से मोटापा आ जाता है, जबकि असल में आलू में मात्र 0.1 प्रतिशत ही वसा पाई जाती है। यह मोटापा बढ़ाने में नाकाफी है। लोग आलू को तेल में तलकर खाते हैं। इससे आलू में वसा की मात्रा बढ़ जाती है और उसको खाने से मोटापा बढ़ने लगता है। एक दूसरा सबसे बड़ा वहम है कि आलू मधुमेह के रोगियों के लिए हानिकारक होता है। यह भी पूर्णरूप से गलत धारण है। आलू में जटिल कार्बोहाईड्रेट होते हैं, जो शरीर में कम दर से ऊर्जा उत्पन्न करते है। यही नहीं, उबला हुआ आलू मधुमेह रोगियों के लिए लाभदायक माना जाता है।

आलू के स्वादिष्ट उत्पाद व आर्थिकी :- आलू में पानी की मात्रा ज्यादा होने के कारण इन्हें शीत भंडारण में रखना अति आवश्यक है। इसके लिए किसानों को काफी कीमत चुकानी पड़ती है। परंतु अगर आलू के विभिन्न उत्पादन बना दिये जाएं तो एक तो कच्चे आलू के मुकाबले ज्यादा दाम मिलेगा एवं भंडारण की समस्या का भी निदान हो जाएगा। आलुओं का प्रसंस्करण विभिन्न प्रकार के उत्पाद बनाकर दिया जा सकता है। जैसे कि चिप्स, फ्राईज, शुष्क उत्पाद (शुष्क चिप्स, लच्छा, क्यूब्ज, बड़ियां, पापड़, फ्लेक्स, ग्रैन्यूल्स और आलू का आटा) एवं आलू स्टार्च (मांड) इत्यादि। आलू द्वारा निर्मित उत्पादों को सुखाकर रखने के परिणामस्वरूप उनमें नमीं की मात्रा कम होने से भंडारण, परिवहन और पैकेजिंग में सुविधा होती है। आलू के सूखे उत्पाद आसानी से कम लागत में तैयार किए जा सकता हैं और इनके उत्पादन में महंगी मशीनरी की आवश्यकता भी नहीं पड़ती व उत्पाद लंबे समय तक ताजा रहते हैं। इनमें ताजे आलू से बने फ्राईड चिप्स की अपेक्षा वसा भी मात्रा आधी होती है, जो कि स्वास्थ्य के प्रति जागरूक लोगों के लिए उपयुक्त है।

आलू से अच्छी गुणवत्ता वाले उत्पाद बनाने के लिए आलू में कुछ गुणों का होना जरूरी है। अच्छे उत्पाद बनाने के लिये उन्हीं आलू किस्मों का उपयोग करना चाहिए, जिनमें शुष्क पदार्थो की मात्रा 20 प्रतिशत या उससे अधिक हो व अवकारक शर्करा की मात्रा 150 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम ताजा भार से अधिक नहीं होनी चाहिये। इसके अलावा आलू का आकार गोल/लंबा या अंडाकर होना चाहिए व आंखे गहरी नहीं होनी चाहिये। केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित आलू किस्में जैसे कि कुफरी चिप्सोना-1, कुफरी

शेष पृष्ठ 8 पर

हिमालय के स्वभाव-सीमाओं को सम्मान से ही सुरक्षा

ओमकार चौधरी

अब हिमालयी क्षेत्रों में आपदा आने के बाद केवल राहत दल भेजना पर्याप्त नहीं है। आज आवश्यकता है – पूर्वानुमान, रोकथाम, चेतावनी, सुरक्षित निकासी और वैज्ञानिक पुनर्निर्माण के एक निरंतर सुरक्षा चक्र की।

हिमालय केवल बर्फ, पत्थरों और ऊंची चोटियों की पर्वत-श्रृंखला नहीं है। वह दक्षिण एशिया की जल-सुरक्षा, मानसूनी व्यवस्था, जैव-विविधता, कृषि और करोड़ों लोगों की आजीविका का आधार है। लेकिन जिस हिमालय को हम स्थिर-अडिग मानते आए हैं, वह भू-गर्भीय दृष्टि से दुनिया की सबसे युवा और सक्रिय पर्वत-श्रृंखलाओं में है। जलवायु परिवर्तन और बढ़ते मानवीय हस्तक्षेप ने उसकी स्वाभाविक संवेदनशीलता को गंभीर बना दिया है। अब हिमालयी आपदाएं केवल अतिवृष्टि, बादल फटने या भूकंप तक सीमित नहीं हैं। बर्फ, चट्टान, हिमनद झील, नदी, मलबा और मानव निर्मित ढांचे मिलकर ऐसी बहु-आपदा शृंखलाएं पैदा कर रहे हैं, जिनका पूर्वानुमान कठिन और विनाश कई गुना हो सकता है।

26 अगस्त, 2026 को नेपाल के रसुवा जिले और तिब्बत-नेपाल सीमा के निकट भोटेकोशी-त्रिशूली नदी क्षेत्र की आपदा इसका नवीनतम उदाहरण है। वैज्ञानिक आकलन के अनुसार लगभग 5,200 मीटर की ऊंचाई पर हिमनद का बड़ा हिस्सा टूटकर करीब 1,200 मीटर नीचे घाटी में गिरा। बर्फ-चट्टानों के विशाल मलबे ने

नदी को अस्थायी रूप से रोका। पानी जमा हुआ और अवरोध टूटते ही जल, मलबे और शिलाखंडों की प्रचंड धारा दौड़ पड़ी। आधे घंटे में नदी का जलस्तर नौ मीटर तक बढ़ गया। जलविद्युत परियोजनाएं, सड़कें, पुल व बस्तियां चपेट में आईं। सबसे चिंताजनक संदेश यह है कि विनाशकारी बाढ़ के लिए निचली घाटियों में भारी वर्षा होना आवश्यक नहीं है। हजारों मीटर ऊपर हिमनद या चट्टान टूट सकती है, नदी अवरुद्ध हो सकती है और प्राकृतिक बांध टूटने पर तुरंत नीचे विनाशकारी बाढ़ पहुंच सकती है।

पिछले तीन दशकों की घटनाएं इसी खतरे का संकेत करती हैं। वर्ष 1998 में उत्तराखंड के मालपा में विशाल भूस्खलन ने पूरी बस्ती को नष्ट कर दिया। वर्ष 2000 में तिब्बती क्षेत्र से सतलुज में आई विनाशकारी बाढ़ ने हिमाचल प्रदेश में भारी तबाही मचाई। 2005 में पारिचू नदी पर बने प्राकृतिक अवरोध के टूटने से सतलुज घाटी फिर प्रभावित हुई। जून, 2013 की केदारनाथ त्रासदी में असाधारण वर्षा, हिम-पिघलाव, चोराबारी ताल से अचानक निकले पानी और विशाल मलबे ने मंदाकिनी घाटी में भयावह विनाश किया। फरवरी, 2021 की चमोली आपदा ने हिमालयी संकट का एक नया रूप सामने रखा। पता चला कि रोंटी क्षेत्र से विशाल चट्टान-हिमस्खलन हुआ था। करीब ढाई करोड़ घन मीटर चट्टान और बर्फ विनाशकारी मलबा-प्रवाह में बदल गई। ऋषिगंगा-तपोवन जलविद्युत परियोजनाएं चपेट में आईं व 200 से अधिक लोगों की मृत्यु हुई।

अक्तूबर, 2023 में सिक्किम की दक्षिण ल्होनक हिमनद झील फटने से तीस्ता में आई बाढ़ ने दिखाया कि ऊंचे हिमालय में उत्पन्न संकट नीचे बांधों-पुलों, शहरों व सामरिक ढांचों को प्रभावित कर सकता है। दरअसल, इन घटनाओं का कारण कहीं अतिवृष्टि, कहीं हिमनद झील, कहीं चट्टान-हिमस्खलन और प्राकृतिक बांध का टूटना है। एक प्राकृतिक संकट दूसरे संकट को जन्म देता है। यही हिमालय की नई बहु-आपदा चुनौती है।

दरअसल, भू-गर्भीय संरचना के चलते भारतीय भू-पट्टिका आज भी यूरेशियाई भू-पट्टिका की ओर बढ़ रही है। अमेरिकी भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार दोनों के बीच सापेक्ष टकराव करीब 40-50 मिलीमीटर प्रतिवर्ष है। इसी दबाव से हिमालय जन्मा, यही उसे अत्यधिक भूकंपीय क्षेत्र भी बनाता है। हिमालय में तीखी ढलानें, दरारों वाली चट्टानें, पुराने भूस्खलन क्षेत्र और तीव्र कटाव स्वाभाविक हैं। अतः यहां निर्माण व आबादी बढ़ाने से पहले कहीं अधिक सावधानी आवश्यक है। दरअसल, जलवायु परिवर्तन के चलते बढ़ते तापमान से हिमनद सिकुड़ रहे हैं। फलतः नई झीलें बनी और पुरानी झीलों का आकार बढ़ रहा है। इसरो ने 1984 से 2023 के उपग्रह चित्रों के आधार पर भारतीय हिमालयी नदी क्षेत्रों में दस हैक्टेयर से बड़ी 2,431 हिमनद झीलों का अध्ययन किया। इनमें 676 झीलों का में विस्तार पाया गया। हिंदूकुश-हिमालय क्षेत्र में लगभग 200 हिमनद झीलों को खतरनाक माना गया है।

दरअसल, कम अवधि में अत्यधिक वर्षा पहाड़ी ढलानों को अस्थिर कर सकती है। नदी में पानी के साथ भारी मलबा पहुंचा सकती है। हर हिमालयी आपदा को सड़क, सुरंग या बांध का परिणाम मानना गलत होगा। लेकिन अनियोजित निर्माण प्राकृतिक खतरे को बड़ी मानवीय त्रासदी में बदल सकता है।

सड़कों के लिए पहाड़ काटना, ढलानों पर भारी निर्माण, नदी किनारे होटल और मकान, खराब जल-निकासी, निर्माण का मलबा नदियों में डालना तथा वन क्षेत्र का क्षरण जोखिम बढ़ाते हैं। जोशीमठ इसका उदाहरण है। दरअसल, शहर पुराने भूस्खलन के मलबे के मोटे जमाव पर स्थित है और वहां भू-धंसाव का खतरा ज्ञात था। 1976 की मिश्रा समिति ने भी भूमि की भार-वहन क्षमता की जांच के बिना भारी निर्माण न करने की सलाह दी थी।

जलविद्युत ऊर्जा-सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है। अतः हर बांध को आपदा का कारण मान लेना उचित नहीं। लेकिन हिमनद झील, हिमस्खलन या भूस्खलन वाले क्षेत्र के नीचे बनी परियोजना की सुरक्षा सामान्य नदी परियोजना जैसी नहीं हो सकती। भारत सरकार ने 47 बांधों – 38 चालू और नौ निर्माणाधीन – को हिमनद झील फटने से संभावित रूप से प्रभावित होने वाले बांधों में चिन्हित किया है। पहाड़ी राज्यों हेतु जोखिम कम करने की योजना भी बनाई है। आखिर बांध कहां बने, कितनी क्षमता हो व उसके ऊपर हिमनद, झील, भूस्खलन व मलबा-प्रवाह का खतरा कितना है?

हिमालय के भविष्य का सबसे बड़ा विरोधाभास यही है। हिमनद तेजी से पिघलेंगे तो प्रारंभिक दशकों में अधिक पानी, बड़ी हिमनद झीलें और अचानक बाढ़ का खतरा बढ़ेगा। लेकिन लंबे समय में हिमनद सिकुड़ने से कुछ नदी क्षेत्रों में शुष्क मौसम के जल-प्रवाह पर दबाव बढ़ सकता है। हिमालयी नदियां राजनीतिक सीमाएं नहीं मानतीं। तिब्बत में बनी प्राकृतिक झील या भूस्खलन भारत और नेपाल को प्रभावित कर सकता है। नेपाल में उत्पन्न बाढ़ भारत तक पहुंच सकती है। इसलिए भारत, नेपाल, भूटान और चीन के बीच वर्षा, नदी प्रवाह, हिमनद झीलों, हिमस्खलन और भूस्खलन का तात्कालिक आंकड़ा-साझाकरण तंत्र आवश्यक है। संवेदनशील हिमनद झीलों और अस्थिर हिम-चट्टानी ढलानों की उपग्रह, रडार, मानवरहित यान और भूमि आधारित संवेदकों से लगातार निगरानी हो। नदी घाटियों में स्वचालित जलमापक यंत्र, कैमरे और चेतावनी सायरन लगाए जाएं। ऊपरी घाटियों में पहचान जितनी जल्दी होगी, नीचे आबादी को उतना अधिक समय मिलेगा।

हर हिमालयी शहर, तीर्थ और पर्यटन केंद्र की वहन क्षमता निर्धारित हो। पुराने भूस्खलन क्षेत्र, बाढ़ मैदान और मलबा-प्रवाह मार्गों में निर्माण नियंत्रित किया जाए। बड़ी जलविद्युत और सामरिक परियोजनाओं के लिए बहु-आपदा जोखिम आकलन अनिवार्य बनाया जाए। सबसे महत्वपूर्ण भूमिका स्थानीय समुदाय की है। गांवों को सुरक्षित निकासी मार्ग, ऊंचे सुरक्षित स्थान, चेतावनी संकेत और प्राथमिक बचाव का प्रशिक्षण मिलना चाहिए।

हिमालय स्वयं 'कमजोर' होकर समाप्त नहीं हो रहा। वह करोड़ों वर्षों से गतिशील है। कमजोर पड़ रही है तेजी से बदलते हिमालय को समझने और उसके अनुरूप विकास करने की हमारी क्षमता। हमें न हिमालय को विकास से पूरी तरह वंचित करना है और न उसे मैदानी भूगोल समझकर कंक्रीट से भर देना है। विज्ञान को तय करना होगा कि कहां निर्माण सुरक्षित है, भू-गर्भशास्त्र बताए कि कहां नहीं, प्रौद्योगिकी समय रहते चेतावनी दे और सरकारें सीमाओं के पार आंकड़े साझा करें। क्योंकि हिमालय का संदेश अब साफ है। पहाड़ को जीतकर सुरक्षित नहीं रहा जा सकता। उसके स्वभाव और सीमाओं का सम्मान करके ही दक्षिण एशिया अपना भविष्य सुरक्षित कर सकता है।

लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं।

फल एवं सब्ज़ियों का फसलोत्तर प्रबंधन ज़रुरी

उपरांत नुकसान (फसल एवं सब्ज़ी उत्पादन) में हमारे देश का विश्व में अग्रणी स्थान है। यदि उपलब्ध आंकड़ों पर ध्यान दें तो प्रति वर्ष कुल उत्पादन का लगभग 37 प्रतिशत भाग विभिन्न कारणों जैसे तुड़ाई उपरांत उचित देखभाल का ना होना, भंडारण की समय, उपभोक्ताओं तक समय से ना पहुंच पाना आदि से खराब हो जाता है।

फलों से हमें खनिज, विटामिन्स, प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट आदि की प्राप्ति होती है, जो अच्छे स्वास्थ्य एवं शारीरिक विकास हेतु आवश्यक है। टमाटर, गाजर, खुबानी आदि फलों के रंगीन तन्तुओं में एंटीऑक्सीडेंट एवं कैरोटिनायड्स होते है, जो शरीर को हानि पहुंचाने वाले फ्री रेडिकल्स को खत्म करते हैं। टमाटर व तरबूज़ में उपलब्ध लाईकोपीन प्रोस्टेट कैंसर के खतरों को कम करता है। प्याज़, फूलगोभी, ब्रोकोली, सेब, अंगूर तथा हरे पत्ते वाली सब्ज़ियों में फ्लेविनायड्स होते हैं, जो समय से पूर्व संभावनाओं को कम करते हैं। सेजना की पत्तियां/फूल/फलियां व अनारदाना रक्त की मात्रा बढ़ा कर रक्तचाप को दूर करने में सहायक है। दैनिक आहार में फलों व सब्ज़ियों के नियमित सेवन से हम भोजन की पौष्टिकता बढ़ा सकते है। यह पाया गया कि 20-25 प्रतिशत फल/सब्ज़ी खेत से उपभोक्ता के पास पहुंचने के दौरान सड़-गल कर नष्ट हो जाते है। फल व सब्ज़ियों की तुड़ाई, श्रेणीकरण, मूल्य वर्धन, पैकेजिंग, भंडारण व विपणन संबंधी आधुनिक विकसित पद्धतियां को अपना कर इनकी उपलब्धता एवं उपयोग को बढ़ाया जा सकता है।

फलों की तुड़ाई : खाने योग्य प्रयोग की जाने वाली फल व सब्ज़ियों की गुणवत्ता तुड़ाई के समय उनकी परिपक्वता की अवस्था पर निर्भर करती है। यदि सब्ज़ियों को प्रयोग में लाने हेतु उचित अवस्था पर नहीं तोड़ा जाता है, तो उचित रंग, स्वाद, महक, आकार आदि नहीं आ पाता। फलों की तुड़ाई करते समय फलों को खींच कर ना तोड़ें, इससे पौधों की शाखाओं को नुकसान होता है। तुड़ाई उपरांत फलों को छायादार स्थान पर रखें, जिससे उनकी आंतरिक गर्मी कम हो जाए। फलों को सावधानीपूर्वक टोकरी आदि में भर कर वातानुकूलित वैन में खेत से पैकिंग शेड तक ले जाया जाना चाहिए तथा पैकेजिंग शेड में इनकी छंटाई श्रेणीकरण करें। तुड़ाई के बाद फलों की भौतिक तथा रासायनिक क्रियाएं होती रहती हैं। परिणामत: इनके भार, रूप-रंग, सुवास, स्वाद, गठन व पोषण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन गुणों में कमी आने के कारण फल खराब हो जाते हैं। फलों के खराब होने के कई कारण हो सकते है, जैसे परिपक्वता, खरोच, रासायनिक क्षति, व्याधि, तापक्रम, आर्द्रता, उप-ऑक्सीकरण, वानस्पतिकरण, वाष्पशील पदार्थ, पैकेजिंग व्याधि आदि।

आम : फल को काट कर देखने पर गुद्दे का रंग हल्का पीला हो तथा गुठली पूर्ण रूप से सख्त हो तथा पानी में डुबोकर देखने पर फल सतह पर तैरते है। पूर्ण रूप से डूबे नहीं, तो फल पके तथा तुड़ाई हेतु उपयुक्त है। तोड़े हुए आम कम से कम 1 सैंटीमीटर डंठल के साथ होने चाहिए। आम के फल किस्म, आकार, बाहरी रंग एवं गुणवत्ता आदि के आधार पर श्रेणीकृत किए जाते है। फल पूर्ण विकसित, कड़े, ताज़ा, स्वस्थ एवं अन्य समस्याओं जैसे काले धब्बे, चोट-खरोच, रगड़, सिकुड़न आदि से मुक्त होने चाहिए।

केला : फल 115 से 130 दिन में तैयार हो जाते हैं। इस अवस्था में फल का तीन-चौड़ाई भाग का परिपक्व होना, कोणापन का लुप्त होना, गुदे और छिलके का अनुपात 1.1 से 1.4 होना प्रमुख लक्षण है।

लीची : लीची क्लाइमेक्ट्रिक तरह का फल है, अत: इसे पकने के ठीक दो-तीन पहले ही तुड़ाई करनी चाहिए, जिससे पूर्ण रूप से पके फल का विपणन आसानी से हो सके। जब पके फल के छिलकों का रंग गुलाबी तथा कांटों का आकार चपटा सा होता है। उस समय इसकी तुड़ाई पैनिकल सहित कर लेनी चाहिए।

अमरूद : अमरूद में तोड़ने के पश्चात् पकने की क्रिया नहीं होती है। अत: फल वृक्ष पर ही पकने लगे, तब तोड़ना चाहिए। फलों में पीलापन आना तथा सुगंध आना पकने का लक्षण है।

नींबू वर्गीय फल : फलों का हरापन विलुप्त होकर फसल व किस्म के अनुसार केरोटिन का विकास, तुड़ाई के समय चीनी व अम्ल का अनुपात अनुभाग 10 से 12 प्रतिशत होना चाहिए।

बेर : फलों का रंग परिवर्तन की अवस्था पर तुड़ाई करते है, विशेष गुरूत्व 1 से कम हो तथा घुलनशील ठोस पदार्थ 17-18 प्रतिशत के आस-पास होने पर परिपक्वता का अनुमान लगाया जाता है।

फालसा : फलों का रंग गहरा हो जाए, घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा 19 प्रतिशत तथा अम्ल की मात्रा 34 प्रतिशत होती है।

अनार : अनार के पकने पर उसके दाने में किस्म अनुसार रंग आता है। फलों में 12 से 16 प्रतिशत चीनी तथा 1.5 से 2.5 प्रतिशत तक अम्ल होता है। साधारणतया फलों को थपथपाने पर धातु सदृश्य आवाज़ आए तो समझना चाहिए कि फल परिपक्व है।

आंवला : फल का रंग गहरे हरे रंग का हरा विशेष गुरूत्व किस्मानुसार जैसे बनारसी में 1.02 तथा चकैया में 1.10 होता है। घुलनशील ठोस पदार्थ तथा अम्ल के अनुपात में भी तुड़ाई की अवस्था का सही ज्ञान किया जा सकता है। अनुपात 1:1 होता है।

पपीता : पपीते के फल जैसे ही हल्के पीले पड़ें, उन्हें तोड़ कर ठण्डे कमरे में भूसे या सूखी घास पर एक तह से भण्डारण कर लेते है। प्रत्येक फल को कागज़ में लपेट कर रखने से भी फल अति शीघ्र पक कर तैयार हो जाते हैं।

सब्ज़ियां :

टमाटर : टमाटर को दूर के बाज़ार में भेजने के लिए पकी हुई हरी अवस्था (जब टमाटर पूरी तरह पक कर तने की तरफ के हिस्से पर भूरा रंग बनना शुरू हो जाए व फल का तने से दूर वाला हिस्सा पीला हरा होना शुरू हो जाए) पर तुड़ाई करनी चाहिए। टमाटर को प्रसंस्करण या अन्य उत्पाद बनाने हेतु फलों को पूरी तरह पकने के बाद ही तोड़ना चाहिए।

कद्दू वर्गीय सब्ज़ियां : सामान्यतया टिण्डा, करेला, खीरा व ककड़ी के फल पौधों पर फल आने के 6-8 दिन के अंदर तुड़ाई योग्य हो जाते है, जबकि तोरई एवं घीया में फूल आने के 30-40 दिन बाद फल तोड़ाई हेतु तैयार होते हैं। खरबूजे के फलों को पौधे पर पूरी तरह पकने से कुछ समय पहले (जब फल हरे हों व उनके ऊपर धारियां पीली पड़ने लगें) तोड़ लेते है, जिससे उपभोक्ता तक पहुंचते-पहुंचते फल पूरी तरह पक जाता है। तरबूज़ में जब फल का ज़मीन का छूने वाला हिस्सा सफेद से पीला पड़ना शुरू हो जाए, तो फल तोड़ने की अवस्था में होता है। अधिकतर कद्दू वर्गीय फल कोल्ड स्टोर में अधिक समय तक नहीं रखे जाते, फिर भी इनको कम ताप व उचित आर्द्रता पर कोल्ड स्टोर में रख सकते है।

तालिका : फलों व सब्ज़ियों के भंडारण हेतु उपयुक्त तापमान

फल/ सब्ज़ी का नाम	भंडारण का तापमान (सैंटीग्रेड)	भंडारण का का समय (दिन)
आम	11-13	40-50
संतरा	11-13	40-50
अमरूद	8-10	10-13
नींबू	11-13	40-50
टमाटर	15-20	15-20
भिंडी	08-10	14
बैंगन	08-10	20-25
शिमला मिर्च	11-13	21

गाजर व मूली : गाजर व मूली खुदाई से पहले एक हल्की सिंचाई कर दें, जिससे इनकी खुदाई आसान व बिना किसी नुकसान के हो सके। गाजर की खुदाई इसके ऊपरी सिरे का व्यास/चौड़ाई 2-4 सैंटीमीटर होने पर कर लेनी चाहिए। मूली में अधिकतर किस्में बुवाई के 25-55 दिन के अंदर खुदाई के लिए तैयार हो जाती है। गाजर व मूली की जड़ों को खुदाई के बाद पानी से अच्छी तरह धोएं तथा लंबाई, मोटाई व आकार के अनुसार श्रेणीकृत करें।

पालक : पालक बुवाई के 4 सप्ताह बाद कटाई लायक हो जाता है। इसकी 4-6 कटाई ली जा सकती है।

बैंगन : फलों को पूरी तरह पकने से पहले अच्छा आकार व रंग आते ही तुड़ाई करें। तुड़ाई के समय फलों के साथ डंठल व हरा कैलिक्स रहने दें।

प्याज़ व लहसुन : प्याज़ व लहसुन के कंद पौध रोपाई के 130-135 दिन बाद पक कर तैयार हो जाते है। जब 50 प्रतिशत कंदों की ऊपरी पत्तियां ज़मीन पर गिर जाएं, तब इनकी खुदाई शुरू कर देनी चाहिए।

श्रेणीकरण : सब्ज़ियों के विपणन के लिए ग्रेडिंग बहुत महत्वपूर्ण पहलू है। इसके लिए फलों को उनके रंग, आकार व पकाव के आधार पर अलग-अलग श्रेणियों में छांटते है ताकि अच्छा बाज़ार भाव मिल सके।

भंडारण : फल एवं सब्ज़ियों की उपयोग अवधि बढ़ाने, बाज़ार में अनावश्यक बहुलता को रोकने व नियमित आपूर्ति बनाए रखने, दूर के स्थानों पर भेजने व उचित मूल्य प्राप्त करने हेतु भंडारण एक आवश्यक प्रक्रिया है। फलों का आंतरिक तापक्रम कम करने के लिए पूर्व शीतलन प्रभावी पाया गया है। पूर्व शीतलन द्वारा फलों के अंदर होने वाली रासायनिक क्रियाएं जो फलों को पकाने में सक्रिय होती है और मंद पड़ जाती है, जिससे फलों की भंडारण क्षमता बढ़ जाती है तथा भंडारण अवधि में फल कम खराब होते हैं।

प्रसंस्करण : फल सब्ज़ी परिरक्षण/प्रसंस्करण किसानों के लिए अतिरिक्त रोज़गार का एक साधन है। बाज़ार में जब फल-सब्ज़ियों की अधिक आवक होती है, उस समय इनका मूल्य कम होता है, तब इनको परिरक्षण द्वारा संरक्षित कर वर्ष के बाकी महीनों में उपयोग किया जा सकता है। फल एवं सब्ज़ियों से विभिन्न उत्पाद बनाए जा सकते है, जैसे जैम, जेली, मुरब्बा, कैण्डी, पनीर, टॉफी, शरबत, रस, आचार, चटनी, केचअप, सॉस आदि। उत्पाद की गुणवत्ता बनाए रखने हेतु यह आवश्यक है कि फलों को उत्पाद की आवश्यकता अनुसार उचित परिपक्वता पर तोड़ें तथा परिरक्षण की उचित विधि का प्रयोग करें।

शेष पृष्ठ 6 की

आलू खायें कुपोषण भगायें

चिप्सोना-2, कुफरी चिप्सोना-3, कुफरी चिप्सोना-4, कुफरी फ्राईसोना, कुफरी हिमसोना, कुफरी ज्योति, कुफरी लवकार एवं कुफरी चंद्रमुखी इत्यादि। आलू के बेहतर उत्पाद तैयार करने के लिए बड़े पैमाने पर इस्तेमाल की जा रही हैं।

भारत में आलू का प्रसंस्करण 90 साल तक प्रचलित नहीं था। प्रारंभिक दौर में बहुराष्ट्रीय और स्वदेशी उद्यमियों द्वारा संगठित प्रसंस्करण की शुरूआत के साथ आलू प्रसंस्करण उद्योग कई गुना बढ़ गया है। वर्तमान में लगभग 7.5 प्रतिशत आलू उत्पादन का इस्तेमाल प्रसंस्करण के लिए किया जा रहा है। आलू को विभिन्न रूपों में जैसे चिप्स, फ्राईज, शुष्क अथवा सूखे उत्पादों, (शुष्क चिप्स, क्यूबस, बड़ियां, पापड़ लच्छे, ग्रैन्यूल और आलू का आटा) स्टार्च इत्यादि में संसाधित या प्रसंस्करित किया जा सकता है। छोटे पैमाने पर आलू प्रसंस्करण में महिलाएं अत्यधिक सहयोग दे सकती हैं व परिवार की आमदनी में खासी बढ़ोत्तरी भी कर सकती है, जैसे आलू चिप्स को बनाकर यदि 20 रुपये प्रति पैकेट (50 ग्राम) की दर से बेचें तो मुनाफा कमा सकती हैं। इसी कीमत पर आलू के लच्छे को बेचने पर वे काफी मुनाफा कमा सकती हैं। कृषि उत्पादों का किसानों को अधिकतम लाभ मिल सके इसके लिए आलू का प्रसंस्करण अति आवश्यक है और इससे आय के अतिरिक्त स्त्रोत भी बन जाते हैं और बेरोजगारों को स्वरोजगार के अवसर मिल जाते हैं। आलू जब बाजार में बेचा जाता है तो किसानों को उसका कम मूल्य मिलता हैं। परंतु इसी आलू के विभिन्न उत्पाद बना दिये जाएं, जैसे चिप्स एवं अन्य शुष्क उत्पाद तो किसानों को इन आलुओं से और भी अच्छा मूल्य मिल जाता है। वर्तमान में देश के कुछ हिस्सों में छोटे पैमाने पर लोग कुटीर उद्योग के रूप में भी आलू के सूखे उत्पाद तैयार कर मुनाफा कमा रहे हैं। देश में आलू प्रसंस्करण बढ़ने की बहुत संभावनाएं हैं।

आलू का प्रसंस्करण संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्रों द्वारा किया जाता है। संगठित क्षेत्र में मुख्य रूप से ब्रांड नामों के साथ बड़े उद्यमी होते हैं, जबकि छोटे निर्माणकर्ता किसी ब्रांड नाम के बिना स्थानीय बाजार के लिए संसाधित आलू उत्पादों को तैयार करते हैं। आलू के चिप्स के साथ-साथ आलू के शुष्क उत्पाद जैसे कि आलू के श्रेड और चिप्स आदि भी असंगठित क्षेत्र द्वारा बनाए जाते हैं।

परवल की बढ़ती उपयोगिता

परवल को देश के विभिन्न भागों में अलग-अलग नाम से जाना जाता है, जैसे परवल, पलवल, पटल, परोरा या परमाल आदि। निर्यात की दृष्टि से परवल एक महत्वपूर्ण सब्जी है। इससे अच्छी विदेशी मुद्रा प्राप्त की जा सकती हैं। इसकी उपलबधता फरवरी से प्रारंभ होकर दिसंबर तक बाजार में होती हैं।

पोषकीय महत्व :- परवल औषधीय गुणों से भरपूर सब्जी है। यह अत्यंत ही सुपाच्य, स्वास्थ्यवर्द्धक और पौष्टिक सब्जी है। इसका उपयोग हृदय एव मूत्र संबंधी रोगों में किया जाता है। इसके कच्चे एवं मुलायम फलों को सब्जी के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसकी मुलायम शाखाओं एवं पत्तियों का उपयोग सूप बनाने में किया जाता है। देश के कुछ भागों में इसके फलों से मिठाई भी तैयार की जाती है। इसमें पर्याप्त मात्रा में खनिज एवं लौह पाया जाता है। इसमें पाए जाने वाले पोषक तत्व सारणी-1 में दिए गए हैं।

उद्गम एवं वितरण :- परवल भारतीय मूल का पौधा है और संभवत: बंगाल इसका उद्गम स्थल है। इसकी खेती की जाने वाली किस्मों में विविधता असोम-बंगाल क्षेत्र में ज्यादा होती है। यह स्पष्ट करता है कि इसकी उत्पत्ति भारत में हुई है। इसको पश्चिम बंगाल, ओडिशा, असोम, बिहार, झारखंड एवं उत्तर प्रदेश में बहुतायत से उगाया जाता है। इसका सर्वाधिक उत्पादन बिहार में होता है।

वानस्पतिक वितरण :- परवल का वंश ट्रायकोसेंथस एवं प्रजाति डाइवोका है। परवल उष्णकटिबंधीय, बहुतवर्षीय एकलिंगाश्रयी एवं लतादार शाकीय फसल है। पौधे की लंबाई 6-8 मीटर होती हैं। इसे एक बार लगाने के बाद यह उसी स्थान पर कई वर्षों तक पुष्पन एवं फलत करता है। इसकी पत्तियां हृदयाकार, लंबी एवं आधार पर संकरी होती हैं। पत्तियों के कक्ष से तंतु निकलते हैं। इसकी जड़ें कंटील एवं लंबी होती हैं। जड़ें एवं तना, दोनों में नये पौधे को जन्म देने की क्षमता होती हैं। इसकी लताएं पेंसिल के आकार की गहरी हरी होती हैं। यह एकलिंगाश्रयी पौधा है अर्थात नर एवं मादा पुष्प अलग-अलग पौधे पर आते हैं। पत्तियों के कक्ष से नर एवं मादा पुष्प विकसित होते हैं। नर पुष्प शीघ्र आना प्रारंभ होते हैं, जबकि मादा पुष्प देर से आते हैं। अच्छी फलत के लिए नर एवं मादा पौधों का अनुपात 1:10 रखा जाता है। मादा पुष्प में 1-5 अंडज (सामान्यत: 3 तक) विकसित होते हैं। इसके पुष्प नलिकाकार एवं सफेद रंग के होते हैं। इसमें प्रथम पुष्पन कलिका निकलने से 16-20 घंटे बाद होता है, जबकि मादा पुष्प 10-15 घंटे बाद निकलते हैं। अगर तापमान कम है तो पुष्पों का विकास 8-10 घंटे देर से होता है। परवल के नर व मादा पुष्प के खिलने का समय 7-9 बजे सुबह होता है। मादा पुष्प खिलने के 8-10 घंटे पूर्व से लेकर 48-50 घंटे पश्चात तक वर्तिकागत सुग्राह्य बना रहता है।

फल गोलाकार या अंडाकार, चिकने 5.0-12.0 सैं.मी. लंबे तथा 2-6 सैं.मी. व्यास के होते हैं। इसका फल पेपो कहलाता है। फल का गूदा सफेद या क्रीमी सफेद होता है। यह पकने पर पीले रंग का हो जाता है। फल पर कभी-कभी धारियां बनती हैं। इसका खाने वाला भाग पेरिकार्प तथा मिजोकार्प का संयुक्त भाग होता है। इसके गूदे में सख्त बीज बनते हैं और बीज गोलाकार होते हैं, जिसे ग्लोबोज कहा जाता है। बीज काले रंग के होते हैं।

जलवायु :- परवल की खेती के लिए आर्द्र एवं गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है। इसकी खेती सामान्यत: उन स्थानों पर होती है, जहां औसतन तापमान $25-35^0$ सेल्सियस तथा औसतन वार्षिक वर्षा 1500-2000 मि.मी. होती है। पौधे की अच्छी पैदावार के लिए $21-27^0$ सैल्सियस तापमान उपयुक्त माना जाता है। अगर तापमान 5^0 सैल्सियस से नीचे आ जाता है तो पौधों का विकास प्रभावित होता है। इसलिए ज्यादा ठंडक पड़ने पर पौधें का ऊपरी भाग सूख जाता है और सुसुप्तावस्था में चला जाता है। जब तापमान मध्य फरवरी में बढ़ने लगता है, तो पौधे में वृद्धि होने लगती हैं। पौधे में फलत फरवरी-मार्च से लेकर अक्तूबर नवंबर तक चलता है। इसकी वृद्धि के लिए कम पानी की आवश्यकता होती है, परंतु जलमग्न अवस्था में यह सड़कर समाप्त हो जाता है।

सारणी 1. परवल में पाये जाने वाले पोषक तत्व (प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग में)

पोषक तत्व	मात्रा
जल	92.0 ग्राम
ऊर्जा	20 कि. कैलोरी
प्रोटीन	1.3 ग्राम
वसा	0.3 ग्राम
खनिज	0.5 ग्राम
रेशा	3.0 ग्राम
कार्बोहाईड्रेट	2.5 ग्राम
कैल्शियम	30 मि.ग्रा.
फॉस्फोरस	40 मि.ग्रा.
लोहा	1.7 मि.ग्रा.
कैरोटीन	153 माईक्रो ग्राम
पोटेशियम	83 मि.ग्रा.
थाईमिन	0.05 मि.ग्रा.
राईबोफ्लेविन	0.06 मि.ग्रा.
नियासिन	0.5 मि.ग्रा.
विटामिन 'सी'	29 मि.ग्रा.

भूमि की तैयारी :- यह बहुवर्षीय सब्जी है। इसे एक बार लगाने पर 3-4 वर्षो तक लगातार उपज मिलती रहती है। अत: मृदा संरचना एवं उर्वरता का प्रभाव इसकी उपज पर पड़ता है। ऐसी

मृदा जिसकी संरचना बलुई दोमट तथा जिसमें कार्बनिक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में हो, इसकी खेती के लिए उत्तम होती है। मृदा का पी-एच मान 6.0-6.5 तक उत्तम है। इसकी खेती नदियों के किनारे अधिक मात्रा में की जाती है, क्योंकि वहां मृदा की उर्वरता ज्यादा होती है।

खेत तैयार करने के लिए मई/जून के महीने में 2-3 बार गहरी जुताई कर पाटा चलाना चाहिए। पुन: जुन-जुलाई में 2-3 बार गहरी जुताई हैरो या कल्टीवेटर से करनी चाहिए। खेत की अंतिम जुताई के समय 20-25 टन प्रति हैक्टेयर गोबर की सड़ी खाद या वर्मीकम्पोस्ट मिलाना चाहिए।

पौध प्रसारण :- परवल का प्रसारण बीज एवं वानस्पतिक, दोनों विधियों द्वारा किया जाता है:

बीज द्वारा प्रसारण :- सामान्यतया बीज द्वारा प्रसारण किया जाता है, क्योंकि इसमें 50 प्रतिशत पौधे नर होते हैं तथा पुष्पन एवं फसल की क्रिया देर से आरंभ होती हैं। अगर बीज द्वारा प्रसारण किया जाता है तो बीज की बुवाई जून-जुलाई में की जाती है तथा एक हैक्टेयर के लिए 20-25 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है।

क्रमशः

परवल की उन्नत किस्में

परवल की अनेक स्थानीय किस्में पाई जाती हैं। इनमें से प्रमुख किस्में काशी अलंकार, स्वर्ण अलौकिक, राजेंद्र परवल-1, राजेंद्र परवल-2, फैजाबाद परवल-1, फैजाबाद परवल-2, फैजाबाद परवल-3 और काशी जागृति हैं।

परवल की अनेक स्थानीय किस्में क्षेत्र विशेष में उगाई जाती हैं। इन्हीं के आधार पर निम्नलिखित चार वर्गों में बंटा हैं:

वर्ग-1 :- इस वर्ग में वे किस्में आती हैं, जिनके फल 10-13 सैं.मी. लंबे व गहरे हरे रंग के होते हैं।

वर्ग-2 :- इस समूह के किस्म के फल की लंबाई 10-16 सैं.मी. होती है। छिलके हरे रंग के और उस पर हल्की सी पीले रंग की पट्टी होती हैं।

वर्ग-3 :- फलों की लंबाई 5-8 सैं.मी. होती हैं।

वर्ग-4 :- इस समूह के फलों की लंबाई 3 सैं.मी. से कम होती है। छिलके गहरे हरे रंग के होते हैं और दोनों किनारे नुकीले होते हैं।

स्वर्ण आलौकिक : इस किस्म को झारखंड, बिहार, ओडिशा, पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में खेती के लिए उपयुक्त माना गया है। इसके रोपण का समय 15 सितंबर-15 नवंबर है। इससे उपज 25-30 टन/हैक्टेयर प्राप्त होती हैं।

*** स्वर्ण रेखा :-** इस किस्म को झारखंड, बिहार, ओडिशा, पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में खेती के लिए उपयुक्त माना गया है। इसके रोपण का समय 15 सितंबर-15 नवंबर है। उपज 30-35 टन/हैक्टेयर होती हैं।

*** काशी अलंकार :-** यह किस्म भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी से आई है। इसके फल लंबे और हल्के रंग के होते हैं। फलों में बीज की मात्रा कम और गूदा ज्यादा होता है।

*** राजेंद्र परवल-1 :-** इस किस्म का विकास राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, साबौर (बिहार) से किया गया है। इसके फल बड़े और पट्टीदार हरे रंग के होते हैं। इसकी औसत उपज 14-15 टन प्रति हैक्टेयर है।

*** राजेंद्र परवल-2 :-** इस किस्म का विकास राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, साबौर (बिहार) से किया गया है। इसके फल गहरे हरे रंग तथा सफेद पट्टीदार होते हैं।

*** फैजाबाद परवल-1 :-** परवल की इस किस्म का विकास नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा किया गया है। इसके फल आकर्षक और हरे रंग के होते हैं।

*** फैजाबाद परवल-3 :-** परवल की इस किस्म का विकास नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा किया गया है। इसके फल आकर्षक और तकुआनुमा हरे रंग के तथा कम पट्टीदार होते हैं।

*** फैजाबाद परवल-4 :-** परवल की इस किस्म का विकास नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा किया गया है। इसके फल तकुआनुमा हरे रंग के तथा किनारे पतले होते हैं।

*** काशी जागृति :-** यह किस्म भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) से आया है। इसके फल लंबे और हल्के रंग के होते हैं। इस फल में बीज नहीं बनता है और लगाते समय नर पौधों की आवश्यकता नहीं होती है। इसकी औसत उपज 8-10 टन प्रति हैक्टेयर है।

> *वस्तुत: भारत में कीटनाशक उद्योग बेहद संगठित है। बीते कुछ वर्षों में उद्योग के दबाव के कारण 'ऑल इंडिया नैटवर्क प्रोजैक्ट ऑन पैस्टिसाइड रेसिड्यूज' (ए.आई.एन.पी.पी.आर.) जैसे अहम राष्ट्रीय निगरानी कार्यक्रम काफी कमज़ोर हो गए हैं। यह लॉबी कितनी मज़बूत है, इसका अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि सरकार ने मई, 2020 में 27 घातक कीटनाशकों पर बैन लगाने पर विचार करने के लिए एक ड्राफ्ट नोटिफिकेशन जारी किया था। मगर बाद में इस प्रक्रिया को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया।*

खाद्य सुरक्षा का संकट

कीटनाशकों के खतरे में भारतीय

ऋषभ मिश्रा

जब कीटनाशकों का उपयोग खाद्य सुरक्षा संस्थानों द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर किया जाता है, तो इन्हें सामान्यत: सुरक्षित माना जाता है। चिंता तब होती है, जब लंबे समय तक या बार-बार इनका अत्याधिक सम्पर्क होता है, विशेषकर तब, जब इसके साथ भोजन में प्रोसैस्ड फूड की मात्रा भी अधिक हो। ऐसे में इनसे आमतौर पर पाचन संबंधी समस्याएं हो सकती हैं।

दो साल पहले हांगकांग, सिंगापुर और अन्य 5 देशों ने कुछ भारतीय ब्रांड्स के मसाले लौटा दिए थे और अब जापान ने भारतीय आम, तो गत हफ्ते चीन ने भारत से गई मिर्चों की खेप खारिज कर दी। इसकी वजह थी - या तो उनमें कीटनाशकों के अवशेष तय सीमा से अधिक पाए गए या इनकी पैस्ट कंट्रोल प्रक्रिया में खामी रही। ऐसे में यह सवाल उठना लाजिमी है कि यदि निर्यात के लिए चुने गए और सबसे अधिक जांचे-परखे उत्पाद भी विदेशी मानकों पर खरे नहीं उतर रहे, तो देश के सामान्य उपभोक्ताओं की थाली में पहुंचने वाले खाद्य पदार्थों की स्थिति क्या होगी? यह कीटनाशक नियमन प्रणाली और देश में भोजन के सेहतमंद व सुरक्षित होने की गारंटी पर भी एक बड़ा सवालिया निशान लगाता है।

दरअसल हमारे किसान ऐसे कीटनाशकों का इस्तेमाल कर रहे हैं, जिन्हें विकसित देशों ने खतरनाक मान कर प्रतिबंधित कर रखा है, जैसे क्लोरोपायरीफॉस, प्रोफेनोफॉस, पैराक्वाट, मोनोक्रोटोफॉस। देश के अनेक कृषि विश्वविद्यालय और कृषि विस्तार सेवाएं इन कीटनाशकों की सिफारिश करती हैं, बिना इस बात पर ध्यान दिए कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इनकी क्या स्थिति है। इसके अलावा कम से कम 40 फीसदी कीटनाशक वे है, जो कभी रजिस्टर्ड नहीं हैं या नकली हैं। इससे इन कीटनाशकों में कौन-से तत्व हैं या वे कितने घातक हैं, इसका पता ही नहीं चल पाता।

वहीं दूसरी तरफ भारत में फूड सेफ्टी के लिए (एफ.एस.एस.ए.आई.) कीटनाशकों के रजिस्ट्रेशन के लिए सैंट्रल इंसैक्टिसाइड्स बोर्ड और राज्य स्तरीय इकाईयां काम कर रही हैं, लेकिन इनके बीच कोई तालमेल नहीं है। फिर कीटनाशक अधिनियम (1968) का लचर कानून भी आड़े आ जाता है, जिसमें किसी सैंपल के फेल होने पर विभाग के पास अदालत में मामला दर्ज करने के लिए सिर्फ 60 दिनों का समय होता है। यदि समय सीमा के भीतर केस फाइल नहीं कर होता, तो केसल स्वत: खत्म हो जाता है।

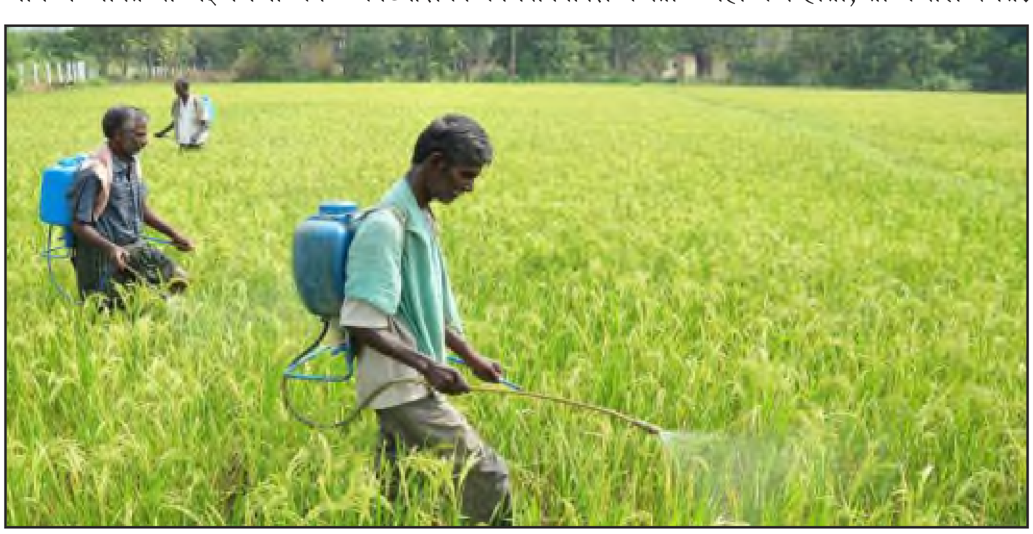

वस्तुत: भारत में कीटनाशक उद्योग बेहद संगठित है। बीते कुछ वर्षों में उद्योग के दबाव के कारण 'ऑल इंडिया नैटवर्क प्रोजैक्ट ऑन पैस्टिसाइड रेसिड्यूज' (ए.आई.एन.पी.पी.आर.) जैसे अहम राष्ट्रीय निगरानी कार्यक्रम काफी कमज़ोर हो गए हैं। यह लॉबी कितनी मज़बूत है, इसका अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि सरकार ने मई, 2020 में 27 घातक कीटनाशकों पर बैन लगाने पर विचार करने के लिए एक ड्राफ्ट नोटिफिकेशन जारी किया था। मगर बाद में इस प्रक्रिया को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया।

गौरतलब है कि हमारे भोजन की थाली में रासायनिक पदार्थों का जोखिम इस बात पर भी निर्भर करता है कि हम कौन-सी चीज़ कितनी मात्रा में और कितनी बार खाते हैं। पालक, मेथी और धनिया इस सूची में सबसे ऊपर हैं, क्योंकि कटाई के पहले इन पर कीटनाशकों का भारी छिड़काव होता है। इनके ऊपर छिलके जैसी कोई सुरक्षा नहीं होती, इसलिए इन्हें बिना छीले खाना खतरनाक हो सकता है। भिंडी, बैंगन और टमाटर भी इस श्रेणी में आते है। अंगूर, स्ट्रॉबेरी और आलूबुखारे जैसे फल, जिन्हें सीधे खाया जाता है, इनमें भी काफी अधिक मात्रा में कीटनाशकों का इस्तेमाल किया जाता है। छिलके उतारे जाने वाले फलों की तुलना में इन फलों को अधिक मात्रा में खाना ज्यादा घातक हो सकता है। मसालों में सबसे ज्यादा रेसिड्यूज (कीटनाशक अवशेष) पाए गए हैं।

कुछ रसायन और अत्याधिक प्रोसैस्ड खाद्य पदार्थ आंतों में मौजूद लाभकारी बैक्टीरिया का संतुलन बिगाड़ सकते हैं। इससे पेट फूलना, एसिडिटी, अपच, कब्ज या दस्त जैसी समस्याएं हो सकती हैं। पोल्ट्री और पशु-पालन में एंटीबायोटिक्स का अनावश्यक इस्तेमाल सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत गंभीर चिंता का विषय है, क्योंकि इससे एंटीबायोटिक प्रतिरोध बढ़ सकता है। लंबे समय तक विभिन्न हानिकारक रसायनों के सम्पर्क में रहने से फैटी लिवर और अन्य मेटाबॉलिक विकारों का खतरा बढ़ सकता है।

सरकार को अपने नागरिकों के स्वास्थ्य की रक्षा हेतु नीतिगत स्तर पर इन 3 कदमों को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए, जिनमें सर्वप्रथम है - सभी प्रमुख खाद्य श्रेणियों की स्वतंत्र प्रयोगशालाओं में व्यापक स्तर पर जांच हो और उसके नतीजे तुरंत आम जनता के लिए सार्वजनिक किए जाएं। दूसरा, मोनोक्रोटोफॉस, पैराक्वाट और क्लोरोपायरीफॉस जैसे रसायन सबसे ज्यादा घातक हैं। इन्हें चरणबद्ध तरीके से पूरी तरह प्रतिबंधित किया जाए और किसानों को सुरक्षित विकल्पों के लिए वित्तीय व तकनीकी सहायता दी जाए। नकली कीटनाशकों को भी बाज़ार से बाहर किया जाना चाहिए।

तीसरा, भारत में फूड सेफ्टी और कीटनाशकों की निगरानी की जिम्मेदारी कई एजेंसियों में बंटी हुई है। जरूरत ऐसी मजबूत संस्था की है, जो कीटनाशक पंजीकरण से लेकर बिकने वाले खाद्य पदार्थों तक, पूरी श्रृंखला की निगरानी करें। पैस्टिसाइड्स मैनेजमैंट बिल 2025 इस दिशा में एक अवसर हो सकता है।

जहरीला होता पानी

नालों पर रोक से ही साफ होगी यमुना

ज्ञानेन्द्रा रावत

यमुना को प्रदूषण मुक्त करने के लिए विभिन्न योजनाओं पर भारी–भरकम राशि खर्च की जा चुकी है। लेकिन समस्या जस की तस है। असल में यमुना तभी साफ हो सकती है जबकि उसमें गिरने वाले नालों के प्रदूषित पानी को रोका जाए। नदी में यह जहर सीवेज व कारखानों के रासायनिक अपशिष्ट आने से घुलता है।

देश में पुण्यदायिनी नदी गंगा के बाद दूसरी प्रमुख नदी यमुना का प्रदूषण चर्चा का विषय बना हुआ है। उसका कारण 85 फीसदी से ज्यादा प्रदूषण बिना ट्रीट किए घरेलू कचरे और औद्योगिक रसायनयुक्त अपशिष्ट है। यदि दिल्ली सरकार की मानें तो यमुना की सफाई अलग-अलग परियोजनाओं के माध्यम से नहीं, वरन दिल्ली के पूरी सीवर इन्फ्रास्ट्रक्चर में व्यापक बदलाव के जरिए की जा रही है। सरकार का मानना है कि यमुना तब साफ होगी जब हर घर सीवर नेटवर्क से जुड़ा होगा।

पहले देश में बहने वाली सबसे लंबी नदी गंगा को लें। मोक्षदायिनी मानी जाने वाली नदी गंगा अपने मायके उत्तराखंड से ही प्रदूषित होनी शुरू हो जाती है। इसका खुलासा कैग की रिपोर्ट कर चुकी है। साल 1985 से लेकर आज तक गंगा की प्रदूषण -मुक्ति हेतु 42,000 करोड़ की राशि खर्च की जा चुकी है। गंगा एक्शन प्लान पर शुरू में ही 1,200 करोड़ की राशि खर्च की गई थी। पर हालात जस के तस हैं।

वहीं अब दिल्ली की यमुना

नदी तमिलनाडु की कूवम नदी सहित देश की सबसे प्रदूषित नदी है। उसकी सफाई पर अब तक पिछले तीन वित्तीय वर्षों में कुल 5,536 करोड़ की राशि खर्च की जा चुकी है। यमुना संरक्षण और प्रदूषण नियंत्रण पर पहले ही लगभग 1,951 करोड़ की राशि खर्च की जा चुकी थी। इसके अलावा दिल्ली सरकार के ग्रीन बजट के तहत दिल्ली जल बोर्ड को 6,485 करोड़ रुपये की राशि दी गई। हाल-फिलहाल में ही दिल्ली सरकार ने यमुना की सफाई के लिए 4,500 करोड़ की राशि की मंजूरी दी है। यही नहीं, यमुना के जल को साफ करने के साथ-साथ नजफगढ़ ड्रेन की सफाई के लिए 1,000 करोड़ की परियोजनाओं को दिल्ली सरकार ने और मंजूरी दी है। इसके बावजूद हकीकत में यमुना आजकल गंदगी और दुर्गंध से सड़ रही है।

आज यमुना नदी, सीवेज और कारखानों के रासायनिक अपशिष्ट से इतनी विषैली है कि सभी प्राणियों और जलजीवों की सेहत के लिए भी जानलेवा साबित हो रही है। यहां तक कि यमुना की मछलियां भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक साबित हो रही हैं। शोध के अनुसार, यहां की मछलियां खाने से या इसका पानी पीने से हार्मोनल असंतुलन, पाचन तंत्र में सूजन और कोशिकाओं को भारी नुकसान हो सकता है। इसका अहम कारण मछलियों के शरीर में माइक्रोप्लास्टिक की मात्रा का अत्यधिक पाया जाना है।

यमुना के जल में जहरीले रसायनों की बात करें तो पानी में अमोनिया की सीमा अधिकांश एसटीपी को भी बाधित करती है। बीओडी का स्तर स्वीकार्य सीमा से अधिक है और घुलित ऑक्सीजन का स्तर अक्सर 2 मिलीग्राम प्रति लीटर से भी कम होने से जलीय जीवों के अस्तित्व के लिए खतरा बना हुआ है। वहीं, मानव और पशु मल-मूत्र से आने वाले बैक्टीरिया का स्तर सीमा से 32,000 गुना से भी ज्यादा है।

दरअसल, कारखानों और सीवेज के जरिए नदी में आने वाले अमोनिया और फ०स्फेट जैसे रासायनिक तत्व जहरीले झाग बनाते हैं। इससे सांस लेने में दिक्कत आती है, गले में सूजन व संक्रमण भी होता है। वहीं पानी में आये क्रोमियम, सीसा, तांबा और अन्य धातुएं शरीर में पहुंचकर तंत्रिका तंत्र को कमजोर करती हैं। ये कैंसर, किडनी तथा लीवर जैसे भयावह रोग की वजह बनती हैं।

यदि राजधानी दिल्ली के 22 किलोमीटर इलाके की ही बात करें तो यमुना अपनी बदहाली की कहानी खुद-ब-खुद बयां करती है। यहां का जल फीकल कोलिफॉर्म, लेड जैसी भारी धातुओं व डिटर्जेंट से इतना प्रदूषित है कि इसके संपर्क में आने से लोग कैंसर, त्वचा रोग, सांस, पेट के संक्रमण, लीवर, तंत्रिका तंत्र आदि गंभीर रोगों का शिकार हो रहे हैं।

देश का सुप्रीम कोर्ट नौ साल पहले ही आदेश दे चुका है कि नदियों में शोधन के बगैर सीवेज न बहाया जाए। इसके बावजूद ना राज्य सरकारों पर इसका कोई असर पड़ा, ना ही सीवेज निस्तारण करने वाली एजेंसियों पर कि वे इस मामले पर कारगर कदम उठातीं।

यमुना तभी साफ हो सकती है जबकि उसमें गिरने वाले नालों के प्रदूषित पानी को रोका जाए। लेकिन हकीकत यह कि देश में यमुना ही नहीं, मोक्षदायिनी गंगा सहित तकरीबन चार सौ से अधिक नदियों में सीवेज का गंदा पानी 1,385 से भी ज्यादा गंदे नालों के जरिए बहाया जाता है। ऐसे मामलों में बीते वर्षों में बेतहाशा बढ़ोतरी देखी गई है। यमुना को विषाक्त करने में नजफगढ़ और शाहदरा के नालों की अहम भूमिका है। हरियाणा और उत्तर प्रदेश से आकर इसमें गिरने वाले नालों का योगदान भी यमुना को प्रदूषित करने में कम नहीं। दिल्ली शासन-प्रशासन के दावे के अनुसार, यमुना की सफाई हेतु आधुनिक मशीनों का इस्तेमाल किया जा रहा है और इसमें मिलने वाले नालों पर विकेंद्रित सीवेज उपचार संयंत्र (एसटीपी) लगाने की योजना बनाई गई है। 13 डीएसटीपी लगाए जाने हैं।

हालांकि, जब तक हरियाणा और उत्तर प्रदेश से आकर यमुना में गिरने वाले नालों की सफाई नहीं होगी, उन पर अंकुश नहीं लगेगा, तब तक यमुना की सफाई की उम्मीद बेमानी है। बहरहाल, यमुना की प्रदूषण से बदहाली का क्रम दशकों से जारी है। अब समय है कि सरकारी प्रयासों के साथ-साथ दिल्ली की जनता भी यमुना का प्रदूषण कम करने में सक्रिय व जागरूकता पूर्ण भूमिका निभाए।

लेखक पर्यावरणविद् हैं।

दुनिया की पहली पर्सनलाइज्ड वैक्सीन के लीड साइंटिस्ट डॉ. माइकल पोस्टो बोले – कोविड टीके वाली तकनीक से बनी है

मरीज के ट्यूमर से बनेगी वैक्सीन; शरीर खुद कैंसर कोशिकाएं ढूंढकर मारेगा

हाई रिस्क स्किन कैंसर मेलानोमा से जिंदगियों को बचाया जा सकेगा। वैज्ञानिकों की टीम ने स्किन कैंसर वैक्सीन डेवलपमेंट में बड़ी उपलब्धि हासिल की है। अमेरिकी फार्मा कम्पनी मॉडर्ना और मर्क ने बड़ा ऐलान किया है। उनकी प्रयोगात्मक वैक्सीन स्किन कैंसर के दोबारा लौटने या फैलने से रोकने में असरदार साबित हुई है। ये दुनिया की पहली पर्सनलाइज्ड (व्यक्तिगत) वैक्सीन है। कैंसर के खिलाफ शरीर के अपने इम्यून सिस्टम (प्रतिरोध तंत्र) को हथियार बनाने की उम्मीद को हकीकत के और करीब ला दिया है।

मेलानोमा के इलाज में ये उपलब्धि क्या है?

वैक्सीन के तीसरे और फाइनल फेज के नतीजे कैंसर रिसर्च में निर्णायक पल हैं। मेलानोमा त्वचा कैंसर की वह किस्म है, जो मेलानोसाइट्स (त्वचा को रंग देने वाली कोशिकाओं) से पैदा होती है। यह शरीर के दूसरे हिस्सों में तेज़ी से फैल सकता है। इसीलिए स्किन कैंसर से होने वाली मौतों में इसका योगदान सबसे ज्यादा है। यह वैक्सीन एम.आर.एन.ए. आधारित है और इसे उन मरीजों पर टैस्ट किया गया, जिनकी मेलानोमा सर्जरी से पहले ही हटाई जा चुकी थी।

यह कैंसर वैक्सीन किस तरह से खास है?

हाल में कैंसर की अन्य वैक्सीनों को मंज़ूरी मिली है। लेकिन यह पहली पर्सनलाइज्ड कैंसर वैक्सीन है, जिसकी फाइनल ट्रायल में एफीकेसी (सफलता की दर) बहुत ऊंची आई है। किसी मरीज के कैंसर के लिए खासतौर पर बनाई गई एम.आर.एन.ए. (mRNA) थैरेपी को हम हकीकत बनते देख रहे हैं।

यह वैक्सीन कैसे काम करती है?

ये वैक्सीन इम्यून सिस्टम को कैंसर कोशिकाओं को पहचानने और खत्म करने के लिए ट्रेनिंग देती है। वैक्सीन का निशाना कैंसर कोशिकाओं की सतह पर मौजूद

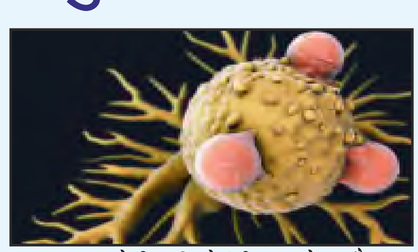

असामान्य प्रोटीन नियोएंटीजन होता है। हर कैंसर मरीज के ट्यूमर की जेनेटिक कोडिंग के आधार पर इसे पर्सनलाइज्ड रूप से तैयार किया जाता है। खास बात यह कि यही mRNA की तकनीक कोविड वैक्सीन की सफलता के पीछे थी।

पर्सनलाइज्ड वैक्सीन कैसे अलग होती है?

पर्सनलाइज्ड कैंसर वैक्सीन खासतौर पर एक मरीज के ट्यूमर के लिए बनाई जाती है। इसके लिए वैज्ञानिक ट्यूमर में हुए म्यूटेशन का विश्लेषण कर नियोएंटीजन की पहचान करते हैं, जो कैंसर कोशिकाओं को सेहतमंद कोशिकाओं से अलग करते हैं। इसके बाद mRNA वैक्सीन इम्यून सिस्टम को इन्हीं निशानों को पहचानकर कैंसर कोशिकाओं पर हमला कर सफाया करने का आदेश जारी करती है।

यह वैक्सीन कब तक उपलब्ध होगी?

मॉडर्ना के प्रेसिडेंट स्टीफन होज के मुताबिक हाई-रिस्क मेलानोमा सर्जरी करा चुके हजारों मरीजों को 2027 तक इसका फायदा मिलना शुरू हो सकता है। क्लीनिकल प्रक्रिया के रूप में देखें तो सितम्बर में ट्रायल के नतीजे प्रतिष्ठित पीयर-रिव्यू जर्नल में आने के बाद अमेरिकी नियामक एफडीए (फूड एंड ड्रग एमिनिस्ट्रेशन) इसकी समीक्षा करेगा। उम्मीद है कि कुछ महीनों में मंजूरी मिल सकती है। वैक्सीन मैन्युफैक्चरिंग कंपनियां भी इसके प्रोडक्शन के लिए उत्सुक हैं। दुनिया भर में ये जानें बचाएगी।

मधुमक्खी पालन - पंजाब में 21 हज़ार टन शहद की पैदावार, उद्योग पर अफ्रीकी कीट का कहर

जालीदार चैंबर और तेल-सिरका ट्रैप से बीटल का करें खात्मा

देश के कुल भू-भाग का महज 1.5 प्रतिशत हिस्सा होने के बावजूद पंजाब हर साल 21,100 मीट्रिक टन शहद पैदा कर देश के कुल उत्पादन (1,51,690 मीट्रिक टन) में 13.90 प्रतिशत का योगदान होता है, लेकिन अफ्रीका से शुरू होकर अमेरिका, यूरोप और भारत के वेस्ट बंगाल (दिसम्बर 2022) के रास्ते फैला खतरनाक स्मॉल हाइव बीटल कीट अब पंजाब के शहद उद्योग पर मंडरा रहा है। अगस्त 2025 में होशियारपुर और लुधियाना के एपीयारी (मक्खी फार्म) में पहली बार लिखे इस कीट से निपटने के लिए पंजाब एग्रीकल्चरल यूनिवर्सिटी (पी.ए.यू.) के कीट विज्ञान विभाग ने विशेष अभियान चलाया हुआ है।

Crop® Chemicals
बेहतर गुणवत्ता
बेहतर फसल
CONTACT: 8288014051 | 9216103075 | 9216103069

4 मिलीमीटर की न मिले तो 4.5 व 5 मिलीमीटर जाली लगाएं

मौनसून के दिनों में नमी और मुलायम मिट्टी के कारण इस कीट के अंडे और लारवा तेज़ी से पनपते है, जो मधुमक्खियों के बच्चों, अंडों और शहद को भारी नुकसान पहुंचाते है। यह शहद में मलत्याग कर फर्मेंटेशन (उबाल) कर देता है, जिससे शहद में बुलबुले बन जाते है और वह खाने योग्य नहीं रहता। जालीदार चैंबर, साबुन का पानी और तेल-सिरका का इस्तेमाल कर इस कीट का खात्मा किया जा सकता है।

जालीदार चैंबर से ड्राइ कर जलाएं

स्मॉल हाइव बीटल के प्रबंधन के लिए जालीदार चैंबर का इस्तेमाल किया जा सकता है। इसमें मुख्य रूप से 4 मिलीमीटर वायर मेश का उपयोग करना बेहतर है। यदि 4 मिलीमीटर जाली उपलब्ध न हो तो 4.5 या 5 मिलीमीटर जाली का इस्तेमाल किया जा सकता है। छत्तों को जालीदार चैबर में झाड़ने पर बीटल जाली से नीचे रखे खाली हाइव या बक्से में गिर कर इकट्ठी हो जाती है। नीचे गिरी बीटल को तुरंत आग की सेक में जला दें या साबुन के पानी में डुबोकर मार दें।

साबुन वाले पानी की ड्रिप ट्रे से करें प्रबंधन

ले चैंबर के नीचे ड्रिप ट्रे में साबुन का पानी भरें। इसके अंदर ऐसा खाली चैंबर या बक्सा रखें, जिसमें बॉटम और टॉप न हो। इसके ऊपर जाली वाला चैंबर रखा जाए। छत्तों को झाड़ने पर बीटल जाली से नीचे खाली चैंबर में गिरेंगी और वहां से साबुन वाले पानी में पहुंच जाएंगी। इससे बीटल को नष्ट करने में मदद मिलेगी।

तेल और सेब का सिरका ट्रैप

प्लास्टिक ट्रैप में 25-30 मिलीलीटर खाने का तेल और 5 मिलीलीटर सेब का सिरका डालें। सिरके की गंध से आकर्षित होकर बीटल अंदर जाकर तेल में डूब मरती है। प्रति डिब्बा 2 से 4 ट्रैप लगाएं और हर तीसरे दिन सिरका दोबारा मिलाएं।

अंडों और लारवा को तुरन्त नष्ट करें

बीटल के अंडे केवल छत्ते की सतह पर ही नहीं, बल्कि छत्तों की दरारों, फ्रेम के ऊपर और कई बार ब्रूड के अंदर भी पाए जा सकते हैं। चावल के दाने जैसे सफेद दिखाई देने वाले अंडों को तुरन्त नष्ट कर देना चाहिए, ताकि इनमें आगे लारवा विकसित न हो सकें। सड़ चुके छत्तों को उबलते गर्म पानी में डालें, ताकि लारवा मर जाए और मोम अलग पिघल जाए।

डॉ. जसपाल सिंह, प्रिंसिपल एंटोमोलॉजिस्ट, पी.ए.यू.

वैज्ञानिकों की सख्त चेतावनी...

12 किलोमीटर उड़ सकता है यह कीट, जिंदा न छोड़ें

पी.ए.यू. वैज्ञानिकों ने मधुमक्खी-पालकों को सख्त हिदायत दी कि एकत्र की गई बीटल्स को किसी भी दूर स्थान पर ले जाकर जिंदा न छोड़ें। बीटल की उड़ने की क्षमता 10 से 12 किलोमीटर तक होती है, जिससे यह वापस आपके या अन्य किसानों के फार्म पर पहुंच जाएगी। इसे मौके पर ही पूरी तरह जलाकर या साबुन के पानी में मारकर नष्ट करना अनिवार्य है। यूनिवर्सिटी वर्कशॉप्स, प्रोग्रामों के माध्यम से एडवाइजरी जारी कर रही है। साथ ही पश्चिम बंगाल जैसे संक्रमित राज्यों से मधुमक्खी कॉलोनियों की खरीद और परिवहन पर सख्त निगरानी रखने की सलाह दी गई है।

पशु–पालन : 6 माह के कम उम्र वाले पशुओं को खराब चारा न दें

पी.ए.यू. की सलाह के अनुसार पशुओं को शेड के अंदर रखें और साफ-सफाई एवं समुचित देखभाल का ध्यान रखें।

पशुओं के मल-मूत्र का सही तरीके से निपटान करें। इस मौसम में मच्छरों, मक्खियों और पशु-चिचड़ियों की संख्या बढ़ जाती है। ये न केवल पशुओं का खून चूसते है, बल्कि लम्पी स्किन डिजीज जैसी बीमारियां भी फैलाते है। इसलिए पशुओं को इनके प्रतिकूल प्रभाव से बचाने के लिए समय पर दवा का छिड़काव करना बहुत जरूरी है। दो सप्ताह बाद छिड़काव दोबारा करें और सभी निर्देशों का पालन करें। 6 महीने से कम उम्र के पशुओं का विशेष ध्यान रखें। पशुओं को कभी भी खराब या फफूंद संक्रमित चारा न दें।

कृषि एवं कृषि संबंधित विषयों पर आधुनिक जानकारी लेने हेतु पढ़ें
खेती संदेश
हिन्दी साप्ताहिक समाचार पत्र
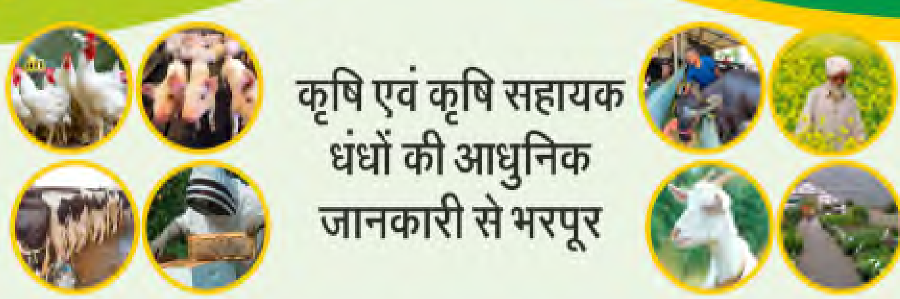
कृषि एवं कृषि सहायक धंधों की आधुनिक जानकारी से भरपूर
एक वर्ष में 52 अंक
किसान भाईयों व डीलर/डिस्ट्रीब्यूटरों के लिए
चंदों में विशेष छूट
एक वर्ष 500/- रुपए
दो वर्ष 800/- रुपए
पेमेंट करने के पश्चात् अपना डाक पता इस नंबर पर भेजें :
90410-14575
KHETI DUNIYAN
TID - 62763351
चंदे भेजने हेतु QR कोड स्कैन करें।
खेती संदेश (कृषि साप्ताहिक)
के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड, पटियाला